व्याख्यान-समह-सार माला का प्रथम पुष्प

श्रावक का अहिंसा व्रत.

श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहिरलाल जी महाराज
के
व्याख्यानों के आधार पर

सम्पादक—मुन्नालाल शास्त्री

प्रकाशक—
श्री साधुमार्गी जैन पूज्य श्री हुक्मीचद जी महाराज की
सम्प्रदाय के हितेच्छु श्रावक मंडल
रतलाम (मालवा)

प्रथमावृत्ति १००० | वीराब्द २४५४ विक्रमाब्द १९८५ | मूल्य ॥)



वक्तव्य.

ज्ञानं पंच विधं प्रोक्तं श्रुतज्ञानं विशेषत

प्राणी मात्र के दु खो का अन्त कर अक्षय सुख देनेवाला एक धर्म ही है। किन्तु धर्माधर्म, कृत्याकृत्य की पहचान आप्त पुरुषों के वाक्य (उपदेश) द्वारा ही सुगमता पूर्वक हो सकती है, इसी कारण से शास्त्रकारों ने किसी अपेक्षा सत्र

जल्दी के कारण, प्रूफ संशोधन ठीक तरह न होने से इधर उधर कुछ अशुद्धियें छप गई हैं, पाठक महाशय कृपया सुधार कर पढें।

महत्पुरुषों के वचनों में ...

श्रुत्वा धर्मं विजानाति, श्रुत्वा त्यजति दुर्मतिम्।
श्रुत्वा ज्ञानमवाप्नोति श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात् ॥

श्रवण करने से ही धर्म जाना जाता है, श्रवण करने से ही दुर्बुद्धि हटती है, श्रवण करने पर ही सत्य ज्ञान की प्राप्ति होती है, इसी तरह श्रवण करने से ही मोक्ष प्राप्ति होती है, जिसके सैकडों उदाहरण शास्त्रों में विद्यमान हैं।

महत्पुरुषों के एक एक वाक्य महान ऋद्धि सिद्धि के दाता होता है। क्योंकि वे जगत के कल्याण की भावनाओं को मुख्य रख कर ही (अनेक प्रकार के कष्टों व परिसहों को सहन करते हुए एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में विचर कर) उपदेश फरमाते रहते हैं। किन्तु आर्यावर्त का ही बहुत सा विभाग ऐसा है जहाँ देशकालानुसार चारित्रकी कठिनाइयों को निभाते हुए नहीं विचार सकते हैं। उन प्रान्तों में बसनेवाले सज्जनों को व भावी प्रजा को भी उन महापुरुषों के वाक्य रूप साहित्य

का लाभ मिल सके, इस हेतु से कई एक महानुभावों की इच्छा जगत् विख्यात महाप्रतापी उग्र चारित्र क्रिया के आराधक वैराग्यपुंज श्रीमद् जैनाचार्य महाराजाधिराज श्री श्री १००८ श्री श्रीलालजी महाराज के व्याख्यानों का संग्रह करके एक अच्छा साहित्य तैयार कराने की थी, किन्तु श्रावकों में इस प्रकार का संगठन बल न होने से यह कार्य किसी ने अपने हाथ में न लिया, अत हम लोग उस प्रभावशाली सारगर्भित साहित्य से वंचित ही रह गये। तथापि उन्हीं के गादीधर वर्तमान जैनाचार्य महाराज श्री श्री १००८ श्री जवाहिरलाल जी महाराज साहब की व्याख्यान शैली भी विद्वतायुक्त प्रतिभाशाली असरकार वैसे ही रोचक भी है। इतना ही नहीं, वर्तमान युग की आवश्यकतानुसार समाज को सन्मार्ग दर्शक एव जैन सिद्धान्तों की पुष्टिकारक है। इसी तरह श्रोताओं के हृदय में अपूर्व भाव पैदा करती है। संक्षेप में इन महात्मा के वाक्य भी जैन साहित्य की खामी को पूर्ण करने वाले हैं।

इस मंडल की स्थापना होने के बाद कितने ही सभासदों की भावना प्रबल होते २ मंडल की चतुर्थ बैठक (रतलाम) के समय प्रस्ताव में रक्खी गई, जिसको विद्यमान सभासदों ने उत्साह सहित अनुमोदन करके प्रस्ताव पास कर दिया। इतना ही नहीं उसको कार्य में परिणित करना व इसके लिये खर्च लगाना भी स्वीकार किया। तदनुसार श्रीमान् के व्याख्यानों का संग्रह सं १९८३ के ब्यावर चातुर्मास में व सं १९८४ के भीनासर के चातुर्मास में, यों दोनों वर्ष में कराया गया और वे व्याख्यान ज्यों के त्यों छपवा कर प्रकाशित करने के लिये बहुत से सज्जनों ने इच्छा दर्शाई थी। इसी तरह ब्यावर में मंडल की बैठक ने प्रस्ताव भी किया था तदनुसार ऑफीस भी क्रमश व्याख्यान छपवा कर प्रसिद्ध करने की तैयारी कर रहा था किन्तु गत वर्ष भीनासर में मंडल की छठी बैठक हुई थी, उस में व्याख्यानों के विषय में यह ठहराव हुआ कि व्याख्यान संग्रह कराया जाता है वह भविष्य में भी कराया जावे और पहले जो संग्रह हुआ है व हो रहा है उनका संशोधन कराया जावे। तैयार होने पर ऑफिस तरफ से प्रसिद्ध किये जावें इत्यादि।

तदनुसार दोनों वर्षों के व्याख्यानों का संशोधन कार्य शुरू कराया। जिस पर से यह प्रतीत हुआ कि व्याख्यान जैसे के तैसे छपवाने में ग्रन्थ बहुत बढ जाने, कोई २ विषय के मजमून में पुनरोक्ति हो जाने, प्रत्येक विषयों का प्रति पादन जुदे२ विभागों में बट जाने से साहित्य की परिपूर्णता में कमी रह जाने, इसी तरह प्रत्येक विभाग भी खंड २ बट जाने से वाचक को जो आनन्द व असर होना चाहिये नहीं हो सकता। ऐसी ही राय खास २ विद्वान् व प्रतिष्ठित सज्जनों की मिली थी उन

पर से सब व्याख्यानों में से छटणी कराके जिन २ विषयों की पुष्टी में जो २ प्रमाण हेतु, उदाहरण प्रथक् २ आये हैं, उनका एक स्थान पर सगठन करा देना अत्यावश्यक जान कर, प० मुन्नालाल जी वैद्य सोजत वालों के द्वारा जो साहित्य तैयार कराया है, उसमें से यह एक पुष्प आपके समक्ष रखते हैं। यद्यपि ऐसा करने में मंडल ऑफिस को धन व समय का विशेष व्यय करना पडा किन्तु पाठकों के लाभार्थ प्रत्येक विषय पर एक २ निबन्ध बनवा कर प्रकाशित किया जाने का ही निश्चय किया है। उसमें से यह 'श्रावक का अहिंसा व्रत' नामक पुस्तक आपके कर कमलों में पहुँचाते हैं। आशा है कि वाचक इस साहित्य को अपना कर हमारा उत्साह को बढावेंगे और पूर्ण कोशीश द्वारा अपने २ यहाँ ग्राहक बना कर उक्त साहित्य के प्रचार में अपना भी हक्क समझ लाभ के भागी बनेंगे।

यहाँ यह भी बता देना समयोचित होगा कि व्याख्यानों का संग्रह कराने व उक्त साहित्य तैयार कराने में मंडल को बहुत खर्च हुआ है। वह सब अलाहदा रख कर भीनासर कमीटी के ठहराव अनुसार केवल कागज व छपाई आदि खर्च के लागत के आधार पर ही पुस्तक की किंमत रक्खी है। इसका स्पष्ट उदाहरण पुस्तक की रोचकता, भव्यता और विशालता से स्वयं आपको अनुभव हो जावेगा।

विज्ञप्ति

उक्त साहित्य में जो २ भूल नजर आवे कृपया सूचित करें ताकि आगामी आवृत्ति में उचित सुधार किया जावे।

स्पष्टीकरण

साधु महात्माओं की भाषा परिमित होता है, इसलिये वे खूब सोच समझ कर शास्त्र की दृष्टी में रख कर ही उपदेश फरमाते हैं। पर संग्राहक, अनुवादक, संशोधक व सम्पादक महाशयों से भाव उल्ट हो गये हो अथवा साधु की भाषा से विपरीत वचन लिखे गये हो तो यह जुम्मेवारी पूज्य श्री के ऊपर नहीं है किन्तु यह दोष कार्यकर्ताओं का समझें। जो २ विषय शास्त्र की दृष्टी से विरुद्ध मालूम दे उसका खुलासा पूज्य श्री से अथवा ऑफिस के साथ लिखा पढी करने से हो सकेगा। इत्यलम्

भवदीय—

बालचंद श्री श्रीमाल — सेक्रेटरी

बरदभाण पीतलिया — प्रेसिडेण्ट

श्री श्वे० साधुमार्गी जैन पूज्य श्री हुक्मीचंदजी महाराज की सम्प्रदाय के हितेच्छु श्रावक मंडल ऑफिस, रतलाम (मालवा)

विषय सूची.





॥ श्री ॥

श्रावक का अहिंसा व्रत ।



जीवन का उपयोग ।



स बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि मनुष्य जन्म बड़े पुण्य से मिलता है। जो मनुष्य इस अमूल्य देह को पाकर भी व्यर्थ की मौज–शौक में इसका अत कर देता है, उसके बराबर कोई मूर्ख नहीं कहला सकता। बुद्धिमान् इस देह को पाकर क्षण क्षण में अपनी श्रेष्ठ साधना का मत्र जपता रहता है पर मूर्ख यही समझता है कि मैंने मनुष्य जन्म पाया है, फिर ऐसा देह नहीं मिलेगा, इसलिये जो कुछ मौज–शौक करलू वही मेरी है।

मित्रों ! यह इस मनुष्य का अज्ञान है कि वह इस प्रकार का विचार लाता है। वह नहीं समझना कि मैं जिसको मौज–शौक समझ रहा हू वही मेरे दु ख का कारण होगा। समझे भी कहां से ? समझ ज्ञान के बिना नहीं आ सकती। ' असमझ ' ही अज्ञान है और अज्ञान ही का दूसरा नाम आध्यात्मिक अन्धकार है। अज्ञान के बराबर मनुष्य के लिये कोई अधकार दुनिया में नहीं है। ससार में जितने बुरे काम होते हैं, उन सब का कारण अज्ञानता और मन का तिमिर है। अज्ञानता को दूर करना अधकार में से प्रकाश में आना है।

मित्रों ! आप लोग बिजली स परिचित हैं । आप जानते हैं कि बिजली पावर-हाउस में पैदा होती है । और जिन जिन जगहोंपर इस के तार के साथ ग्लोब लगे रहते हैं, वहा के बटन दबाने से उन जगहोंपर अधकार मिटकर प्रकाश फैल जाता है । ठीक इसी तरह जो लोग आध्यात्मिक अंधकार को मिटाना चाहते हैं, उन्हें सद्‌गुरु रूपी पावर हाउस से सम्बन्ध जोडना चाहिये । याद रखिये कोरे सम्बन्ध जोडने से कुछ नहीं होगा । पावर-हाउस पावर देता है, घर में उस के तार के साथ ग्लोबभी लगा है, पर जबतक बटन नहीं दबाया जाता, प्रकाश नहीं होता । अपने आध्यात्मिक अधकार को र करने के लिये भी मनुष्य को भक्ति-रूपी बटन दबा लेना चाहिये । गुरु में जितनी ताकत होगी उतना प्रकाश देगा ।

गुरु का चुनाव पहले करना चाहिये । खूब परीक्षा कर देख लेना चाहिये कि जिसको मै अपना गुरु बनाता हू वह वास्तव में गुरु बनने योग्य है या नहीं ।

आज गुरु बनने के लिये बहुत से वेषधारी मनुष्य मुह- धे रहते हैं, पर परीक्षकों को मालूम होता है कि अधिकांश उनमें ' गुरु ' तो क्या पर साथी बनने योग्य भी नहीं होते ।

भारतवर्ष भावुक देश है । यहा के निवासियों मे , जितना धर्म-प्रेम है, उतना अन्य देश वासियों में नहीं । धर्म-प्रेम ही के कारण ' साधु ' नामधारी पर इतना भक्ति-पूर्वक विश्वास करते हैं कि तन मन धन से सेवा करने तैयार रहते है । क्या भारतवर्ष को छोडकर किसी देश में ५६ लाख साधु " ?

' नहीं ।'

क्या आपने कभी यह हिसाब लगाया है कि इन साधुओं का प्रति दिन कितना खर्च भारतवर्ष को उठाना पडता है ? लोग स्वयं मूर्खों

रहते हैं, नगे रहते हैं पर साधुओंके लिये भर पेट अन्न और वस्त्र का प्रबन्ध करते हैं ! साधुओं को कई बार ऐसे ऐसे माल खानेको मिलते हैं कि कई अभागों ने वैसे भोजन के दर्शनभी नहीं किये होंगे। यदि इस हिसाब से इनका खर्च गिना जाय तब तो कई लाख रुपैये होते है पर आप इस हिसाब से नहीं, साधारण से साधारण खुराक प्रति मनुष्य चार आने के हिसाब से भी जोडेंगे तब भी प्रतिदिन १४ लाख, प्रति मास ४ करोड २० लाख, और प्रति वर्ष ५० करोड ४० लाख रुपैये का खर्च होता है !!

लोगोंने इतना बडा खर्च अपने सिर क्यों उठा रखा है ? इस लिये कि हमारे में रहा हुआ जो अंधकार है वह दूर हो जाय। उद्देश्य कितना पवित्र और कितना उच्च है ! पर क्या आज यह उद्देश्य सफल होता है ? क्या इस भावुकता में यहीं उपता रही हुई है ?

'नहीं।'

'क्यों ?'

'इस लिये कि सच्चे गुरु नहीं।'

कई गुरु कहलानेवाले ऐसे हैं कि जिनका गाजा और भग के बिना कुछ काम नहीं चलता, चडस के बिना जिनकी आखें चढी रहती हैं, और दम लगाये बिना तो मानों उन का दम ही निकला जा रहा है।

मित्रों ! आप ऐसोंको अपना गुरु न चुनिये। और ऐसों को भी न चुनिये, जो गुप्त और आश्चर्ययुक्त आध्यात्मिक ज्ञान रखते हुए भी कई बार असावधानी से चिडचिडेपन, खेद, मूर्खता या किसी प्रकार के दुर्व्यसन का आखेट बन जाते हैं। परन्तु ऐसे को चुनिये, जो अपने महत्व को साहस, रोष-शुन्यता, दृढता, शान्ति और असीम धैर्य के द्वारा दिखाता है।

मित्रों ! आप लोग विजली स परिचित है । आप जानते हैं कि बिजली पावर-हाउस में पैदा होती है । और जिन जिन जगहोंपर इस के तार के साथ ग्लोब लगे रहते हैं, वहा के बटन दवाने से उन जगहोंपर अधकार मिटकर प्रकाश फैल जाता है । ठीक इसी तरह जो लोग आध्यात्मिक अंधकार को मिटाना चाहते हैं, उन्हें सद्गुरु रूपी पावर हाउस से सम्बन्ध जोडना चाहिये । याद रखिये कोरे सम्बन्ध जोडने से कुछ नहीं होगा । पावर-हाउस पावर देता है, घर में उस के तार के साथ ग्लोबभी लगा है, पर जबतक बटन नहीं दबाया जाता, प्रकाश नहीं होता । अपने आध्यात्मिक अधकार को र करने के लिये भी मनुष्य को भक्ति-रूपी बटन दवा लेना चाहिये । गुरु में जितनी ताकत होगी उतना प्रकाश देगा ।

गुरु का चुनाव पहले करना चाहिये । खूब परिक्षा कर देख लेना चाहिये कि जिसको मैं अपना गुरु बनाता हू वह वास्तव में गुरु बनने योग्य है या नहीं ।

आज गुरु बनने के लिये बहुत से वेषधारी मनुष्य मुंह-वि रहते हैं, पर परीक्षकों को मालूम होता है कि अधिकांश उनमें ' गुरु ' तो क्या पर साथी बनने योग्य भी नहीं होते ।

-भारतवर्ष भावुक देश है । यहा के निवासियों मे जितना धर्म-प्रेम है, उतना अन्य देश वासियों में नहीं । धर्म-प्रेम ही के कारण ' साधु ' नामधारी पर इतना भक्ति-पूर्वक विश्वास करते हैं कि तन मन धन से सेवा करने तैयार रहते है । क्या भारतवर्ष को छोडकर किसी देश में ५६ लाख साधु " ?

' नहीं । '

क्या आपने कभी यह हिसाब लगाया है कि इन साधुओं का प्रति दिन कितना खर्च भारतवर्ष को उठाना पडता है ? लोग स्वय भूखों

रहते हैं, नंगे रहते हैं पर साधुओंके लिये भर पेट अन्न और वस्त्र का प्रबन्ध करते हैं। साधुओं को कई बार ऐसे ऐसे माल खानेको मिलते हैं कि कई अभागों ने वैसे भोजन के दर्शनभी नहीं किये होंगे। यदि इस हिसाब से इनका खर्च गिना जाय तब तो कई लाख रुपैये होते हैं पर आप इस हिसाब से नहीं, साधारण से साधारण खुराक प्रति मनुष्य चार आने के हिसाब से भी जोडेंगे तब भी प्रतिदिन १४ लाख, प्रति मास ४ करोड २० लाख, और प्रति वर्ष ५० करोड ४० लाख रुपैये का खर्च होता है !!

लोगोंने इतना बडा खर्च अपने सिर क्यों उठा रक्खा है ? इस लिये कि हमारे में रहा हुआ जो अंधकार है वह दूर हो जाय। उद्देश्य कितना पवित्र और कितना उच्च है ! पर क्या आज यह उद्देश्य सफल होता है ? क्या इस भावुकता में वही उच्चता रही हुई है ?

'नहीं।'

'क्यों ?'

'इस लिये कि सच्चे गुरु नहीं।'

कई गुरु कहलानेवाले ऐसे हैं कि जिनका गाजा और भंग के बिना कुछ काम नहीं चलता, चडस के बिना जिनकी आखें चढी रहती हैं, और दम लगाये बिना तो मानों उन का दम ही निकला जा रहा है।

मित्रों ! आप ऐसोंको अपना गुरु न चुनिये। और ऐसों को भी न चुनिये, जो गुप्त और आश्चर्ययुक्त आध्यात्मिक ज्ञान रखते हुए भी कई बार असावधानी से चिडचिडेपन, खेद, मूर्खता या किसी प्रकार के दुर्व्यसन का आखेट बन जाते हैं। परन्तु ऐसे को चुनिये, जो अपने महत्व को साहस, रोष-शुन्यता, दृढता, शान्ति और असीम धैर्य के द्वारा दिखाता है।

यदि आपको ऐसे गुरु न मिले तो गुरु बिना रह जाओ पर अनधिकारी को गुरु मत बनाओ। जो अनधिकारी को गुरु बना लेता है, उसे दिखनेवाली इस छोटीसी भूल के बदले महा पश्चात्ताप तथा अनन्त जन्म मरणका दुःख भोगना पडता है।

भाइयो ! जैन साधुको शास्त्रकी भाषामें 'श्रमण' कहा है। और उसके उपासक को 'श्रमणोपासक'

कोई प्रश्न कर सकता है कि उपासकको 'श्रमणोपासक' क्यों कहा ? 'अरिहंतोपासक' क्यों नहीं कहा ? इसका उत्तर यह है कि 'श्रमणोपासक' कहने से अरिहन्तोंका भी समावेश हो जाता है पर केवल 'अरिहन्तोपासक' कहनेसे श्रमणो का उपासक नहीं हो सकता। इसमें एक और भी बात है वह यह कि तीर्थंकर समय विशेषमें अवतार लेते है अतएव उनके जमानेमें जो होते हैं वे ही लाभ उठा सकते हैं। पर श्रमण तो जब तक प्रभु का शासन चलता है तब तक रहते हैं इसलिये उनको श्रमणों के दर्शन होते रहते हैं। पर अरिहन्तों के नहीं।

श्रमणोपासक को शास्त्र में 'द्विजन्मा' और 'श्रावक' भी कहा है। क्यों कि सूत्र में, व्रतधारी श्रावक होते ही उसके लिये पाठ कहा गया है कि–'श्रमणोवासए जाया' अर्थात् श्रावक का जन्म हुआ। श्रमणोपासक का अर्थ आप समझ गये होंगे और श्रावक का अर्थ शास्त्र सुननेवाला यह भी आप समझते होंगे। पर 'द्विजन्मा' शब्द का अर्थ आपके समझने योग्य है।

कोषों में और अन्य शास्त्रों में 'द्विजन्मा' शब्द के कई अर्थ मिलते हैं। जैसे–ब्राम्हण, पक्षी, साधु, श्रावक आदि। ब्राह्मण का नाम द्विजन्मा तब पडता है जब कि उसका उपनयन (यज्ञोपवित) संस्कार हो जाता है। यज्ञोपवित (जनोई) लेने के बाद, वह संसार की माया जाल से दूर होकर तत्त्व-विचार आदि में लीन हो जाता था

अर्थात् अपने पूर्व जीवन से बहुत भिन्नता कर लेना था, इसी लिये उसे (ब्राह्मणको) 'द्विजन्मा' याने दूसरा जन्म धारण करनेवाला कहा है।'

पक्षी को 'द्विजन्मा' क्यों कहा ? इसका मतलब यह है कि पक्षी शुरूमें एक अंडे के रूपमें होता है। न उसके हाथ पैर होते है और न उसके पख आदि सिर्फ तरल पदार्थ के रूपमें अंडे में रहता है। कालान्तर में वह अंडा फूटकर उसमें से पख आदि धारण किया हुआ पक्षी निकलता है। वह पक्षी पहले किस रूपमें था और बाद में किस रूपमें आगया अर्थात् उसने अपने जीवन काल में कैसा महान् अन्तर कर दिया, इसी लिये उसे भी 'द्विजन्मा' कहा है।

साधु के लिये यही बात समझनी चाहियें। साधु पहले गृहस्थ था। अब उसने साधु व्रत ले लिया, अपने जीवन में महान् अन्तर कर दिया इसलिये साधुको भी द्विजन्मा कहा है। यानी 'अणगार जाए' साधुका जन्म हुआ।

श्रावक द्विजन्मा क्यों कहा गया अब यह बात शायद आप समझ गये होंगे। श्रावक भी अपने जीवन में महान् अन्तर कर देता है इसलिये यह भी द्विजन्मा कहलाता है।

कई भाई सोचते होंगे कि हमने श्रावक के घर में जन्म लिया है इसलिये हम 'श्रावक' ही हैं। या ब्राह्मण के घर जन्म लिया है, इसलिये हम 'ब्राह्मण' ही हैं। अत हम भी 'द्विजन्मा' कहलानेके अधिकारी हैं। पर ऐसा नहीं है। यह खयाल करना भी गलत है।

'कारण ?'

कारण यही कि जैसे मयूर, हस, बगुला आदि प्राणियोंके अण्डो को हम मयूर, हस, बगुला नहीं कह सकते। वे इन पक्षियोंके अंडे हैं, यह हम मानते है, पर ये वे पक्षीही है, ऐसा नहीं मानते। हा, काला-

न्तर में जब ये फूटकर पक्षीरूप धारण कर लेंगे तब यथा नाम कहे जा सकेंगे और तभी ये 'द्विजन्मा' कहलाने के अधिकारी समझे जायेंगे।

इसी प्रकार श्रावक या ब्राह्मणके घर जन्म ले लिया, यह तो हुआ उन पक्षियोंकी तरह अंडे के रूप आना, पर जब श्रावक-सुत श्रावक व्रत धारण कर लेता है और ब्राह्मण पुत्र का उपनयन संस्कार होता है तभी वे क्रमश श्रावक या ब्राह्मण कहलाते हैं और तभी द्विजन्मा कहलाने के लिये अधिकारी माने जाते हैं।

जो श्रावक-तत्वसे अज्ञात है, मिथ्या बोलता है, दुराचरणोंका सेवन करता है वह 'द्विजन्मा' नहीं है। इसी प्रकार जो ब्राह्मण ब्रह्मचर्य आदि गणोंसे रहित है, ससारकी माया जाल से दूर नहीं है, वह भी 'द्विजन्मा' नहीं है।

जैन शास्त्रने 'द्विजन्मा' 'श्रमणोपासक' या 'श्रावक' बनने में, हरेक मनुष्य के लिये उदारता पूर्वक द्वार खोले हैं। जब आप शास्त्र खोलकर देखेंगे, तो पता लगेगा उच्च से उच्च वर्ण से लेकर शूद्र तक जैन श्रावक तो क्या पर साधु तक बने हैं।

जो शास्त्र धर्म पालनके लिये इस प्रकारका हरेक मनुष्यको समानाधिकार नहीं देता वह शास्त्र कहलाने योग्य नहीं कहा जा सकता।

वैसे तो ससारमें 'शास्त्र' नामकी बहुतसी पुस्तकें हैं। वैद्यक शास्त्र 'शास्त्र' कहलाता है, कोर्टोंकी कानूनकी पुस्तक यानी 'धारा शास्त्र' भी 'शास्त्र' कहलाता है पर मैंने जो 'शास्त्र' शब्द का नाम लिया है, वह इनसे बिलकुल भिन्न है। ये शास्त्र शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाले शरीर का ही भला चाहनेवाले हैं इसलिये ये लौकिक शास्त्र हैं, पर जिसके द्वारा शारीरिक ममत्व छूटे आत्माके अन्वेशण में सहायता मिले, आत्मा से परमात्मा बननेका जिससे ज्ञान प्राप्त हो और इन्हीं

वातोंके साथ इन्हीं सम्बन्ध में जगतके साहित्य का विचार आवे, उसे शास्त्रकार 'शास्त्र' कहते हैं।

शास्त्रों के अगाव विचारोंका हम वर्णन नहीं कर सकते। हमारी जिह्वा थक जाती है। वैदिक ग्रन्थोंमें इसी भावको व्यक्त करनेके लिये 'नेति नेति' शब्द मिलता है।

प्रिय मित्रों! जिस शास्त्र का मैंने उल्लेख किया है क्या वह शास्त्र क्या यह उदार शास्त्र किसी व्यक्ति विशेष के साथ पक्षपात करेगा? क्या वह कभी कहेगा कि धर्म पालनेका आधिकार अमुक अमुक व्यक्ति को है? क्या वह कहेगा कि धर्म पालनेका अधिकारी अमुक ही हो सक्ता है और अमुकोंके लिये अनधिकार चेष्टा है?

'नहीं, कभी नहीं।'

पैर में सोना हरेक नहीं पहन सकता। जिसके ऊपर राजाकी महरबानी होती है. वही पहनता है। इसका मतलब यह हुआ कि सोना महरबानी की चीज है। इसका उपयोग हरेक नहीं कर सकता। धर्म महरबानीकी चीज नहीं। जो धर्म किसी का पक्षपात नहीं करता वही धर्म 'धर्म' है और वही राष्ट्रीय व विश्वधर्म कहलाने योग्य है।

कई भाई सोचते हैं कि धर्मकी आराधना अमुक व्यक्ति विशेष व साधु ही कर सक्ते हैं, हरेक नहीं, यह विचार बिना जडका है। धर्मका इतना संकुचित अर्थ नहीं है। धर्म में ऐसी मात्रा नहीं है कि उसका उपयोग थोडे व्यक्ति ही कर सकें और जगत मात्र उससे वंचित रहे। अगर धर्ममें इतनी संकुचित मात्रा ही होती तो धर्मके फैलाने वाले अवतारोंको लोग ईश्वर, परमेश्वर, प्रभु के नाम से क्यों पुकारते? धर्म खास व्यक्तियों के लिए नहीं पर सारे संसार के लिये है।

जिस प्रकार कुदरतकी चीजोंको उपयोगमें लाने का सबको हक है उसी प्रकार धर्मको पालनेमें सबका हक बराबर है। सूर्य किसी खास व्यक्ति के घर प्रकाश नहीं करता पर सारे जगत को प्रकाश देता है। जल किसी खास व्यक्तिकी तृषाको नहीं बुझाता पर पीनेवाले सब प्राणियों की बुझाता है। वायु, कुछ प्राणियोंके लिये ही जीवन दाता नहीं वरन सब प्राणियोंके लिये है। अग्नि केवल राजा के ही पकानोंके बनाने में काममें नहीं आती पर सर्व साधारण उसका उपयोग कर अपने अपने उपयोगकी वस्तुए बना सकते हैं।

मित्रों! यदि सूर्यमें उपरोक्त गुण न हो, जलमें ऊपर कही हुई शक्ति न हो, वायुमें बतलाई हुई विशेषता न हो, अग्नि पक्षपात रखती हो तो क्या कोई उन्हे, सूर्य, जल, वायु, अग्नि आदि के नाम से पुकारेंगे?

'नहीं।'

इसी प्रकार धर्म सबके काममें आनेकी वस्तु है। जो धर्म कुछ व्यक्तियोंके काममें आवे और कुछके न आवे वह अपूर्ण है।

कुदरत की सब वस्तुओंपर सर्व साधारण का हक है, हरेक को अधिकार है कि वह उन चीजोंको काममें लावे। यदि उन वस्तुओंसे किसी को कुछ हानि पहुंचे तो यह दोप उस वस्तुका नहीं है, वस्तु तो गुण वाली ही है। पर उसमे जो अवगुण हुआ है वह उस उपयोग करनेवालेकी प्रकृति के अनुसार नहीं थी, इसलिये हुआ।

सूर्य सबको रोपनी देनेवाला है पर ससारमें कितनेही प्राणियों के लिये यह रोपनी अधकार पैदा करनेवाली सी हो जाती है। जैसे—उल्लू जिमगादर आदि को सूर्य के प्रकाश में दिखाई नहीं देता। इनको रात्रिमेंही दिखता है। इन प्राणियोंको दिखाई नहीं देता यह दोप सूर्यका नहीं, पर इनकी प्रकृति का है।

कुदरतकी वस्तु सबको फायदा पहुचाती है, चाहे उसका उपयोग राजा करे, ब्राह्मण करे, चाडाल करे, साधु करे, सबके लिये वह एक रूप है। किसीका भेद भाव नहीं करती। धर्मभी ऐसी ही वस्तु है।

कई भाई धर्मको एक 'हौआ' समझते हैं। वे समझते है कि धर्म एक भयकर छूतकी बीमारी है। जो इसका स्पर्श करता है, उसका सर्व नाश हुए बिना नहीं रहता। ससार में आज जो विशृखलता फैली हुई नजर आती है, वे समझते है कि इसके फैलानेमें 'धर्म' नामकी वस्तुका जबरदस्त हाथ है। मैने पत्रोंमें ऐसे लेख देखे है, लोग इसी विश्वास के कारण 'ईश्वर' और 'धर्म' नामकी वस्तुका अस्तित्व दुनियामेंही उठानेके लिये कमर कस रहे हैं। वे समझते है कि 'ईश्वर' और 'धर्म' जितने जल्दी दुनियाके पर्देसे उठ जाय उतनाही जल्दी मानव समाजका भला होगा।

जिन युक्तियों के आधार पर इन भाइयोंने 'ईश्वर' और 'धर्म' को अर्ध चन्द्राकार देने का लिखा है, वे युक्तियें इतनी पोची और सार हीन है कि सिर्फ धर्म की व्याख्या जाननेवाला बालक भी उनका खडन सहल से कर सकता है।

मित्रों! धर्म यदि छूत की बिमारी की तरह होता, उसका फल दुनिया में दुःख फैलाने वाला, सुव्यवस्था में हस्तक्षेप करनेवाला मालूम होता तो तीर्थंकर अवतार और महापुरुष इसकी जड मजबूत करने के लिये क्या इतना उद्योग करते?

जिन भाईयोंने शास्त्रों का कुछ भी मनन किया है, वे जानते हैं कि धर्म परलोक में सुख देने वाला ही नहीं पर इहलोक में भी कल्याणकारी है। *

---

* एसोण परलोए हिआए सोहाए खम्माए निसेस्साए अणुगामियत्ताए भव्वइ।

धर्म की जसी सुन्दर व्याख्या जैन शास्त्र बतला रहा है, वैसा ही कणाद न्यायशास्त्र में भी बतलाया है।*

जिस 'धर्म' शब्द की इतनी सुन्दर व्याख्या है भला क्या वह त्यागने योग्य माना जा सकता ह?

जिन दिनो मानव समाज में धर्म का आदर था, उन दिनों वह आनन्द से अठखेलिया करती थी। पर जब से उसके प्रति उदासीन रहना आरम्भ किया तभीसे घोर हाहाकार और चारों तरफ से करुणापूर्ण चित्कार सुनाई देती है।

धर्म पालन के दो मार्ग है। एक गार्हस्थ्यरूपसे और दूसरा अणगार रूप से। गृहस्थावस्था में रहकर जो धर्म पालन करता है, वह 'श्रावक' कहलाता है और घरबार त्याग कर जो धर्म आराधना करता है वह कहलाता है—'साधु'।

मित्रो! साधु के आचार विचार क्या होते हैं, फिर कभी मौका हुआ तो बतलाऊगा। अभी आप लोगोंको श्रावक के कर्तव्य क्या होते है, बतलाना चाहता हू।

यह बात तो मैंने पहले ही प्रगट कर दी थी कि श्रावक हरेक जातिका बन सकता है। इसके लिये शास्त्र यह नहीं कहता कि अमुक जातिवाला ही हो।

श्रावक के दो भेद होते ह। एक 'समकिती—श्रावक' और दूसरा 'व्रती—श्रावक'।

समकिती—श्रावक उसे कहते हैं, जो देव 'अरिहन्त', गुरु 'निर्ग्रन्थ', और धर्म 'अरिहन्त भाषित', पर आस्था रखता है।

---

* यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धि स धर्मः।

व्रती-श्रावक वह कहलाता है, जो ऊपर कही हुई बातों के मानने के साथ साथ श्रावक के लिये जो जो व्रत बतलाये गये हैं, उनका यथा शक्ति पालन करनेवाला हो।

मित्रों ! बारह व्रतधारी श्रावकों की अपेक्षा आज सामान्य व अपूर्ण व्रतधारी श्रावक ज्यादा देखने में आते हैं। आप लोगों में ज्यादा तर किंचित व्रतधारी श्रावक ही हैं। इसका कारण हमें तो यही माळूम होता है कि आप लोग १२ व्रतधारी श्रावक बनने में कठिनता का अनुभव करते हैं। आप समझते हैं कि व्रती श्रावक बनना बहुत मुश्किल है। १२ व्रतधारी व्रती-श्रावक बनने पर संसार का हम कुछ भी काम नहीं कर सकते। १२ व्रतधारी-श्रावक बनने पर हमको दुनिया के सब कामों से अलग रहना पडेगा। हमें हमारी सुख-समृद्धि से वंचित रहना पडेगा। और हमें उनसे भी दूर रहना पडेगा, जिन बन्धुओं को और स्त्री पुत्रों को हम बहुत ही प्यार करते हैं।

मित्रों ! व्रती श्रावक बनने में आप जिन जिन कठिनाइयों का अनुमान करते हैं, विश्वास रखिये वे कठिनाइये इसमें नहीं हैं।

इस बात को तो आप खूब जानते होंगे कि 'आनंद' 'कामदेव' आदि बडे बडे ऋद्धिशाली पुरुष व्रती श्रावक थे और चेटक उदायण आदि बडे बडे राजा भी।

आप अपनी ऋद्धि और वृद्धिके साथ सुखसे इनके ऋद्धि वृद्धि सुखके साथ तुलना कीजिये। जब इतने बडे २ पुरुषभी व्रती श्रावक हो सकते हैं तब भला सोचिये तो सही आप क्यों नहीं हो सकते ?

बंगालमें चैतन्य प्रभु नामके एक प्रसिद्ध भक्त हो गये हैं। उन्होंने बहुत से ऐसे देवी भक्तों को जो पशु बलिदान के पक्षपाती थे अहिंसक बनाया उनके उपदेशका असर बंगाल पर इतना पडा कि वहां

के बहुत से मनुष्य उनके मत के अनुयायी बन गये। इनके शिष्योंमें कई करोडपति भी थे। चैतन्य प्रभु गरीबों और अमीरोंमें कोई भेद नहीं रखते थे। इनके गरीब शिष्य जिस प्रकार भिक्षा मागने जाया करते उसी प्रकार ये धनवान करोडपति शिष्यों को भी यही काम सौंपते थे। इनके शिष्य केवल रोटीकी ही भिक्षा नहीं मांगते पर 'मित्रों परमेश्वरका नामलो' यह भिक्षा भी मागते थे। जिस समय लोग करोडपतियों के बच्चों को साधु वेशमें देखते उनका हृदय प्रेमसे उमड पडता और शक्ति से विशेष वस्तु द्वारा भी इनका आदरसत्कार कर अपना अहोभाग्य मानते थे। जब इनको कोई स्त्री पुरुष भिक्षा देने तयार होते तब कहते कि मुझे इस भिक्षाकी जरुरत नहीं है अतरात्मा जिससे तृप्त हो, ऐसी ईश्वर के स्मरण रूपी भिक्षा दीजिये।

चैतन्य प्रभु एक बार दक्षिणमें गये। एक दिन उन्होंने गीता पाठ करनेवाले एक पडितके पास बैठे हुए एक श्रोता की आंखों से अविरल अश्रुधारा बहाते देखा। वह था किसान। चैतन्य प्रभु ने उमसे पूछा:—

भक्त! तू क्या समझा?

किसान — महाराज, भगवान् कृष्णने अर्जुनको जो वाणी सुनाई, मेरे ऐसे भाग्य कहा कि उसे सुनता। आज मैं उस वाणी को सुनकर धन्य धन्य हुआ हू। इसी आनन्द से मेरा हृदय उछल रहा है, बाकी मैं कुछ नहीं समझा। गीतापाठी पडित के हृदयमे वैसा प्रेम न था।

प्यारे मित्रों! इसी तरह आप लोग भी तीर्थंकरोंकी वाणि को अनन्य प्रेमसे श्रवण करेंगे तो आपके हृदय भी उस किसान की भांति द्रवित होंगे। तीर्थंकरों और गणधरों की वाणीको सुन कर भी आपके हृदय प्रेमसे न उमडेंगें तब कब उमडेंगे! याद रखिये जिस मनुष्यका हृदय कोमल होगा वही उपदेश ग्रहण कर सकेगा। हृदय कमल विकसित किये बिना आनन्द कहां?

आप लोगोंने आनंद कामदेव आदि श्रावकों के कई बार चरित्र सुनें होंगे, यदि हृदय कोमल कर सुनते तो असर अवश्य होता। आपके हृदय से यह उमंग अवश्य फूट निकलती कि जब ऐसे ऐसे सांसारिक कार्य करनेवाले भी व्रती–श्रावक हो सकते हैं तब हम क्यों न बने?

पानी में रहनेवाला कमल सूर्यकी किरणों को स्पर्श करते ही खिल उठता है पर पानी से बाहर रहनेवाला सूख जाता है।

मित्रों! क्या आप जानते हैं कि बड़े बड़े श्रावक गृहस्थों और राजा महाराजाओं के चरित्रों की नोंध शास्त्र में क्यों ली गई? इसीलिये कि इन चरित्रों से दूसरे लोग शिक्षा लें और अपने जीवन को नियमित बनावें।

' विद्वानों का कहना है कि ' अनियमित जीवन सच्चा जीवन नहीं है। ' अतएव समझदारों का कर्तव्य है कि अपने जीवन में एक भी ऐसा कार्य न होने दें जो अनियमित ढंग से किया जा सके। अनियमित कार्यों का कोई ढांचा तो बनाया जाता ही नहीं, केवल अटकल पच्चू होते हैं। जो मनुष्य मकान बनवाते समय अटकलपच्चू का सहारा लेता है वैसा सुदृढ नहीं होता जैसा विचारपूर्वक बनाते।

क्यों? इसलिये कि आप जानते हैं कि अगर मकान का नकशा ठीक तौर से न बनाया जायगा तो मकान सुदृढ और अच्छे ढंग से न होगा।

मित्रों! इसी प्रकार आप याद रखिये कि नकशा या ढांचा बनाने का नियम सिर्फ मकान के लिये ही लागू नहीं पड़ता पर हरेक काम में लागू पड़ता है। लेखक के पुस्तक रचने में, चित्रकारके चित्र बनाने में, वक्ता के व्याख्यान देने मे, सुधारकके सुधार करने में, आविष्कारक के गवेषण में, सेनापति के संग्राम कराने में, इन सभी कार्यों में, कार्य

आरम्भ के पूर्व जिस प्रकार कार्य करना हो, उसका नकशा, मस्तिष्क में सावधानी के साथ रच लेना पडता है ! जैसी पूर्व कल्पित नकशे की एकना, सुदृढता और पूर्णता होगी वैसी ही अन्त में उस कार्य की सिद्धि होगी ।

आप लोग अपने जीवनको नियमित बनाईये नियमित बनानेसे आपका जीवन परिपूर्णता को पहुचने लगेगा । और आपको अपने जीवन का प्रयेक क्षण शान्तिमय और हरेक कार्य सुख पूर्ण प्रतीत होगा।

यदि आप में यह सोचने की ताकद नही कि हम किस प्रकार अपने जीवनका ढांचा बनावें तो आप शास्त्र में वर्णित बडे बडे श्रावको के आदर्श चरित्रोंको सामने रखिये । सामने रखकर उन चरित्रोंके भावको समझिये । चरित्रोंका भाव शरीरमें रहे जीवके समान है। जिस शरीरमें जीव नहीं वह शरीर किसी कामका नहीं । जीव विना के शरीर को कोई प्यार नहीं करता, वह सबको भयकर-सा दिखाई देता है । जीव बिना के शरीरको लोग गाड देते हैं, जला देते है, पानी मे फैक देते हें, घरमें उपयोगी वस्तुके तरीके कोई उसका सचय नहीं करता । इसी प्रकार कथा के भावको न समझनेसे कोई फल नहीं होता यह चैतन्य विना के शरीरके समान है । वस्तुकी कीमत उसमें रहे हुए सारभूत गुणसे है। सारहीन वस्तुको कोई नहीं पूछता वह निकम्मी है ।

यदि आप चरित्र के भावको समझकर उसे अपने जीवन में उतार लेगे तो निश्चय समझिये कि आप भी उस चरित्रनायक के समान बन जायगे । यही उसके समान बनने की कुंजी है ।

कई बार वक्ता लोग कथा के बाहिरी वर्णनको बडे बडे अलकारों से सजाते हैं पर सार भूत वर्णनको बहुत सूक्ष्मरूप–अल्परूप देते हैं, इस लिए श्रोता लोग उस कथा के सारको समझ ही नहीं सकते । कई

जगह ऐसा भी होता है कि श्रोता ही अर्थका अनर्थ कर देता है ! वक्ता कहता क्या है और आप समझते क्या हैं।

एक पंडितजी रामायण की कथा बाच रहे थे। उन्होंने कहा—'सीताका हरण हो गया' पर एक श्रोता ने समझा 'सीताका हरणिया हो गया याने सीता मृगी (हरिणी) बन गई।

कथा रोज चलती थी। वह श्रोता हमेशा उत्सुक रहता कि देखें सीता, हरिणी से वास्तविक सीता कब बनती है। बहुत दिनों बाद कथा समाप्त होनेके अवसर तक भी, हरिणी बनी हुई सीता का वास्तविक सीता होनेकी बात न सुनी तब उस श्रोतासे न रहा गया, वह बोल ही तो उठा कि 'पंडित जी महाराज ! सीता हरिणी तो हो गई पर फिर सीता हुई या नहीं ?'

पंडितजीने अपने सिरपर हाथ लगाकर कहा—'फूटे नसीब तुम्हारे और हमारे शामिल ही ! मैंने कहा था क्या और तुम समझे क्या ?'

भाइयों ! जिस प्रकार इस श्रोताने अपनी ही भूल से कुछ का कुछ अर्थ किया वैसा न होने पावे।

कई भाई आजकल निकलते हुए शास्त्रों को खरीद कर अपने आप बाच जाते हैं। यह अच्छा है, पर इससेभी अच्छा तो यह हो कि अपने से विशेष विद्वान् साधु के पासही से सुनें। साधु जिन वचनों के द्वारा आपको समझायेंगे उनका असर कुछ और ही होगा और अपने आप पढ़नेका कुछ और ही। भोले भाईको साधु के मुखारविंद से निकले हुए शब्द साधारण भले ही जँचें पर उनमें अजब मधुरी और शक्ति होती है। हाथी दांत तो आपने देखा ही होगा। जब वह दांत होता है तब उसके द्वारा वह नगर के दरवाजे के बड़े बड़े किवाड़ तोड़ डालता है। पर जब वही दांत खेरादीके यहां चूड़ा तयार होकर बदनें

पहनती है उसमें वह शक्ति नहीं होती। भले ही वह चूड़ा बहनोंके श्रृंगारको बढ़ादे पर वह किवाड तोडने की शक्ति, जो हाथी के पास रहने पर थी, वह उस में कभी नहीं आसकती इसी प्रकार धर्म गुरु के मुखारविंद से निकले हुए वचनों में जो शक्ति होती है वह उस दांतवाले हाथी के पराक्रम के सदृश होती है और जो साधारण मनुष्यों के मुह से वचन निकलते है या खुद छपे हुए ग्रन्थादि पढते हैं वे उसे उस बहिन के चूडे के समान भले ही शोभा देने वाले हों पर उसकी बराबरी वे कभी नहीं कर सकते।

मैंने ऊपर साधु के वचन की जो विशेपता बतलाई है वह नामधारी साधु के वचन से ताल्लुक नहीं रखती। नामधारी साधु के वचन में वह शक्ति न मिलेगी यह उसी साधु के अन्दर उतनेही विशेष प्रमाण में मिलेगी जो जितना ध्यानी मौनी और योगाभ्यासी अर्थात भावित आत्मावान तथा रूप का मुनि होगा।

ध्यानी मौनी और योगाभ्यासी साधु के साथ यदि इतना समय न हो कि वह आपको शास्त्र सुना सके और केवल कुछ सत्सगका ही लाभ आपको मिले तो भी आपको निराश न होना चाहिये। सच्चे साधुके सत्सगसे सत्सगी के पापोंका अन्त जरूर होजाता है, ऐसे कई उदाहरण मिलते हे। प्रभवा चोर और चिलायती सच्चे साधुओं के समागमसे पवित्र बनगये। इसीप्रकार वाल्मिकी नामका एक बडा भारी हत्यारा डाकू था! यह कोली था। साधुओं पर भी इसको दया न आती थी मगर सत्सगसे यह वाल्मिकी जीवन अपनेमें महा ऋषि बन गया। जिसकी बनाई हुई रामायण को लोग बडी भक्तिपूर्वक पडते हैं और अपने जीवन को आदर्श बनाते है।

१२ व्रतधारी श्रावक बननेका उल्लेख हमने ऊपर किया था। हमने कहा था कि श्रावकव्रती इसलिए नहीं बनते कि वे इसमें कठिनता का अनुभव करते है।

मित्रों ! जिस प्रकारका जीवन अभी आप बिताते है, उसमेंकी उच्छृखलता, व्रत धारण करनेपर आपको जरूर निकाल देनी होगी पर उस उच्छृखलता के निकालने से आपकी हानि न होगी, लाभ होगा। लाभ आपको ही नहीं पर ससारको भी होगा।

आज क अधिकाश लोगों में उच्छृखलता बढ रही है। उनकी यह उच्छृखलता उनके हरेक काम में नजर आती है। उच्छृखलता के कारण से ही आज सारे ससार में वर्णसकर कार्य फैल रहे है। वर्णसकर कार्य से मेरा मतलब यह है कि जिस वर्णवालेको जो कार्य करना चाहिये उसे न कर भिन्न वर्णवाले के कार्य को स्वीकार करना। वर्णसकर कार्य दुनिया के लिए हानिकर है। ससारमें आज इतनी खैंचातानी करने पर भी लोग सुखपूर्वक अपना पेट नहीं भर सकते। इसके खास कारणोंमें से यह भी एक है।

श्रीकृष्ण ने गीताके अदर—

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः, पर धर्मात्स्वनुष्ठिताव्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः, पर धर्मो भयावह॥

'यदि अपने धर्ममें कुछ कठिनाईयें हों और दूसरे के धर्ममें सरलता दिखलाई देतीं हों तो भी अपने धर्मके लिए प्राण दे देने चाहिये—लिखा है

'अपने धर्मके लिए प्राण दे देने चाहिये' क्या इसका मतलब यह है कि एक शराबी शराब पीना अपना धर्म समझता है शराब के बिना उसका कुछ भी काम नहीं चलता इससे उसे मर जाना चाहिये ? क्या एक आदमी पर-स्त्री के साथ मौज मजा उडानेमें ही धर्म मानता है उसके बिना उसे चैन नहीं पडती, कोई इस दुष्कर्मसे छुडाने की कोशीश करे तो क्या उसे उसके विरुद्ध लडकर मर जाना चाहिये ? राजा प्रदेशी जिसके हाथ सदा खून से सने रहते थे, मनुष्योंकी हिंसा करना ही उसने

अपना धर्म मान लिया था क्या उसे अपना वह धर्म मुनिके उपदेश से न त्यागना चाहिये था ?

तब इस श्लोकका क्या अर्थ हुआ ?

मित्रों ! यदि अपने कार्य को ही चाहे वह बुरा ही क्यों न हो, उसे ही धर्म मान लिया जाय तबतो उसे उसके लिए मर जाना ही चाहिये। पर ऐसा अर्थ नहीं है। जो ऐसा अर्थ मानता है वह बडी भारी गलती करता है।

हमने जहाँ तक इस श्लोक पर विचार किया है तथा अन्य विद्वानों के इस पर के विचार सुने हैं उससे यही विश्वास होता है कि यहाँ 'धर्म' शब्दका सम्बन्ध **वर्णाश्रम धर्म** के साथ है, न कि किसी और अर्थ के रूपमें।

वर्णाश्रम धर्म के साथ यदि ऐसा कडा उपदेश न दिया जाता तो ससार की व्यवस्था ठीक तरह से नहीं रहती।

भारतवर्षकी सामाजिक नींव **वर्णाश्रम** पर कायम की गई थी। जब तक लोग अपने अपने **वर्ण** के अनुसार ठीक २ तरह से कार्य करते थे तब तक शान्ति थी पर जब इसकी स्थिती डॉवॉडौल हो गई तभी से सारे सुखोंकी जड हिल गई।

पहले का वर्णाश्रम आजकल से बिलकुल भिन्नता रखता था। आजकल का वर्णाश्रम केवल नाम मात्र का वर्णाश्रम है। आज का ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र का पुत्र, अपने पूर्वज इसी वर्ण में गिने जाते थे इसलिये अपना भी उसी नाम से परिचय देता है तथा लोक भी ऐसा ही समझने लग गये हैं। पर पहले अमुक वर्णकी सतति होने से उसे उसी वर्ण का, माना जाय, यह बात नहीं थी, उसके कर्तव्य के अनुसार उसे विशेष 'वर्ण' के अन्तरगत करके पुकारते

थे। इस व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण शूद्र तक हो सकता था और शूद्र ब्राह्मण तक।* उत्तराध्ययन के २५वें अध्याय मे 'वर्णाश्रम' के लिये ऐसा कथन है—

कम्मुणा बम्मणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइस्सा कम्मुणो होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥ ३३ ॥

अर्थात् कर्म के अनुसार ही मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र होता है।

ब्राह्मण को ब्राह्मण कर्म, क्षत्रिय को क्षत्रिय कर्म, वैश्य को वैश्य कर्म और शूद्र को शूद्र कर्म करने की व्यवस्था योग्यतानुसार ग्रंथों में बतलाई है। इसका मतलब यह नहीं है कि जैसे ब्राह्मण का कर्म विद्याध्ययन करना है और क्षत्रिय का वीरता रखना, पर ब्राह्मण में वीरता न होनी चाहिये और क्षत्रिय में विद्या का अभाव होना चाहिये। वैश्य का काम व्यापार करना है और शूद्र का सेवा, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि वैश्यकी स्त्री को कोई दुष्ट उडा ले जाता हैं तो भी वैश्य को वीरता कर के न बचाना या हम शूद्र बन जायेंगे इसलिये किसीकी सेवा न करें।

मित्रों! याद रखिये हरेक मनुष्य मे चारों गुणों की जरूरत है। प्रश्न उठाया जाता है कि तब **वर्णाश्रम** कैसा? इसका उत्तर यह है कि हरेक मनुष्य हरेक कार्य में पूर्ण प्रवीण नहीं होता, इसलिये जिसमें जिस गुणकी विशेषता हो उसेही उस कार्य के योग्य समझने चाहिये।

हमने उच्छृंखलता शब्द का ऊपर प्रयोग किया था। **वर्णसकर** कार्य उसी उच्छृंखलता का फल है। और भी अनेक प्रकार की उच्छृंखलताएँ मनुष्यों में बढ रही है। १२ व्रत धारण करने पर हानिकर

---

* शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चेति शूद्रताम्।

ये उच्छृंखलताएँ दूर करनी होंगी। उच्छृंखलता अभिमान की पुत्री है।
१२ व्रतधारी को व्यर्थ का अभिमान दूर करना होगा और जब अभिमान दूर हो जायगा तो फिर उच्छृंखलता भी अपने आप नष्ट हो जायगी।

उच्छृंखलता उस अभिमान की पुत्री नहीं है, जिसे विद्वान् लोग **स्वाभिमान** या धर्मयुक्ताभिमान के नाम से पुकारते हैं। **स्वाभिमानी** में उच्छृंखलता नहीं होती। उच्छृंखलता उसीमें होती है जो मिथ्याभिमान का शिकार बना हुआ है। मिथ्याभिमान और स्वाभिमानमें उतना ही अन्तर है जितना आकाश और पाताल में, या दक्षिण ध्रुव और उत्तर ध्रुवमें।

जहाँ मिथ्याभिमान धर्मको ठोकर मारता है वहाँ स्वाभिमान धर्म के लिये बलिदान होजाता है। जहाँ मिथ्याभिमान कर्त्तव्यसे पराङ्मुख होता है वहाँ **स्वाभिमान** उसे हृदयके सिंहासन पर विराजमान करता है जहाँ मिथ्याभिमान विलासके लिये चरण चूमता फिरता है वहाँ **स्वाभिमान** अपने नेत्र के थोडेसे इशारेसे उसे अपना गुलाम बना देता है मिथ्याभिमान जहाँ थर थर कापता है, **स्वाभिमान** वहीं पैर जमाकर उसपर विजय प्राप्त करता है।

मिथ्याभिमान जीवनका अपकर्ष और स्वाभिमान उत्कर्ष करनेवाला है।

मिथ्याभिमान के कारण लोग अपनी शक्ति से अधिक कार्य करने की उमंग रखते हैं। देखते हैं कि इसी के वशीभूत होकर कई लोग हरेक कार्यमें शक्तिसे अधिक अपव्यय करते हैं। वे समझते हैं कि इस कृत्यसे लोगोंपर हमारी छाप पडेगी और हम प्रतिष्ठा के पात्र माने जायेंगे। उनका यह कृत्य भोले लोगोंकी आखों के सामने कुछ दिनोंके

लिये चका चौंध पैदा कर सकता है पर अधिक दिनोंतक नहीं। समय आनेपर नग्नसत्य दिखलाई देता है और लोगोंकी नजरोंसे वे इतने गिर जाते है कि जिसका अनुमानभी नहीं किया गया था।

मित्रो! मिथ्याभिमान में उद्दडता रहती है इसीलिये मिथ्याभिमानी मनुष्य समझता रहता है कि 'हम चौडे ओर बाजार सकडा।' इसी मनुष्य का यह विश्वास जब सीमा पार पहुच जाता है तब वह मुँहके बल ऐसा गिरता है कि सम्हलना मुश्किल हो जाता है।

मिथ्याभिमानी अपनाही पतन नहीं करता पर भोले भाले लोगोंके उत्तेजन का कारण बनकर उनका भी पतन कराने में सहायक होता है।

वे भोले लोग, जो झूँठ बोलने में हिचकिचाहट लाते थे, इन्हींके ससर्ग से अब इसको अपने उत्थान का कारण मानने लगते हैं। जिनको विश्वासघातके नामसे चिड थी वे अब इन्हीं के कारणसे इसी के अनन्य भक्त बन जाते हैं।

मित्रों! स्वाभिमान में यह बात नहीं होती। मिथ्याभिमान में जहॉ उद्दडता थी वहॉ इसमें नम्रता होती है।

नम्रतामें अजत्र आकर्षण शक्ति होती है। यह हरेकको अपनी तरफ खेंच लेती है। और लोगोंके पाससे यह वह काम कर दिखलाती है जिसके लिये दूसरे कई प्रयत्न करनेपर भी सफलता नहीं मिलती थी।

शास्त्रमें जितने उच्च श्रावक हुए हैं यदि उनकी उन्नतिका कारण आप गहरे में पैठकर देखेंगे तो पता लगेगा कि इनकी उन्नतिका मुख्य कारण नम्रता था।

प्यारे भाईयों! आप लोगोंका यह विश्वास कि 'व्रती श्रावक बनने में कठिनता है' इसका मैंने कुछ निराकरण किया। इसपरसे आप समझ गये होंगे कि व्रतोंके पालने में कठिनता वैसी नहीं है

जैसी हम आप समझ रहे है । विशेष विश्वास आपको तब हो जायगा जब कि आप क्रमश १२ व्रतोंका खुलासा सुन लेंगे ।

एक बात आपको शायद और खटकती होगी और व्रतोंका खुलासा करनेपर भी शायद खटके । वह यह कि जब व्रत इतने सुगम है इनके पालने में कोई कठिनता नहीं दिखती तब लोग इनको क्यों नहीं पालते?

मित्रों ! आप जिसको अच्छा समझ गये आपके हृदयने जिसका अनुमोदन कर दिया, उसके प्रति ऐसी शका उठाना ही व्यर्थ है ।

मित्रो ! जिस कार्यकी अनुमोदना हृदय कर लेता है, उसे कार्यमें शीघ्र परिणित करना श्रेयस्कर माना गया है । इतनेपर भी आपको उस कार्य की साधनामें कठिनता और कष्ट प्रतीत होते है वे उस कार्य में नहीं है किन्तु आपके मनमे हैं । यदि आप उनकी ओर से अपना मनोभाव बदल डालेंगे तो टेढा मार्ग झटपट सीधा दिखाई देगा और कठिनता सुगमतामे परिणित हो जायगी ।



सब जीव सुख चाहते हैं.

मनुष्य प्राणी संसार के तमाम जीवोंसे महाबुद्धिशाली माना गया है। यह प्राणी स्व-पर का जितना ज्ञान कर सकता है उतना और कोई भी प्राणी नहीं कर सकता। जिस प्रकार यह अपने सुख दुःख का ज्ञानी होता है उसी प्रकार उसमें यह भी ताकत है कि यह दूसरे प्राणियों के सुख दु खों का ज्ञान प्राप्त कर सके।

वैसे तो हरेक मनुष्य को यह ज्ञान किसी अवस्था तक प्राप्त है पर सर्वांश से उन्हीं महापुरुषोंको होता है जो तीर्थंकर तथा सर्वज्ञ-कहे जाते हैं। साधारण मनुष्य ज्यादा से ज्यादा अपनी चक्षुइन्द्रिय आदि की स्थूल शक्ति जहाँतक काम कर सकती है वहीं तक किसी वस्तुके बारेमें ज्ञान प्राप्त कर सकता है पर तीर्थंकर या सर्वज्ञ कहे जानेवाले महापुरुषों में वह शक्ति होती है कि दृष्ट अदृष्ट तमाम वस्तुओंकी अर्थात् जीव अजीवकी अन्त तक की असलियतका ज्ञान रखते हैं।

यह तो आप जानही गये होंगे कि जीव अजीव कहनेसे संसार की तमाम वस्तुओंका ग्रहण हो जाता है। तीर्थंकर प्रभु व सर्वज्ञोंने हमें ज्ञान कराया है कि 'समस्त जीव सुखके अभिलाषी हैं, कोई भी दु खको पसंद नहीं करता।'

संसारके जीवोंकी इतनी प्रकारकी जातियें है कि हम उनकी गिनती नहीं कर सकते। अतएव प्रभुने हमें इन तमाम जीवोंके मोटे पाच भाग कर सबका बोध करा दिया है। वे पाच भाग ये हैं —

'एकेन्द्रिय, बेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौरेन्द्रिय और पचेन्द्रिय।'

अर्थात् एक इन्द्रियवाले जीव, दो इन्द्रियवाले जीव, तीन इन्द्रिय-वाले जीव, चार इन्द्रियवाले जीव, और पांच इन्द्रियवाले जीव।

पृथ्वीकायिक, अपकायिक, तेजसकायिक वायुकायिक, और वनस्पति आदिकी जिसके केवल स्पर्श इन्द्रिय होती उनकी एकेन्द्रिय जीवोंमें गिनती है।

जिसके स्पर्श और रसेन्द्रिय हो उनकी बेन्द्रिय जीवोंमें गिनती है। जैसे कृमि आदि।

जिसके स्पर्श, रस, घ्राण इन्द्रिय हो उनकी तेन्द्रिय जीवोंमें गिनती है। जैसे चींटी आदि।

स्पर्श, रस, घ्राण, चक्षु इन्द्रिय हो उनकी चौरेन्द्रिय जीवों में गिनती है। जैसे मक्खी आदि।

मनुष्य योनि, तिर्यंच, देवयोनि जिनके स्पर्श, रस, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र हो उनकी पचेन्द्रिय जीवोंमें गिनती है।

जल में जीव है यह बात आज के साइन्सने पूर्ण रीति से सिद्ध कर दिया है। हम आखों से नहीं देख सकते पर वैज्ञानिकोंने यंत्रों के द्वारा जल में लाखों हलते चलते जीव बतलाये हैं। वैसेही खास थावर योनि के जीवों का पिण्ड है। इससे निश्चय होगया है कि जैन का सिद्धात सत्य ही है।

जिस प्रकार कई लोग जल में जीव नहीं मानते वैसेही वनस्पतिमें भी नहीं मानते। पर विज्ञान के बल से अब यह सन्देह मिटता जाता है। वैज्ञानिकोंने इन में जीव होना सिद्ध कर दिया है। विज्ञानाचार्य जगदीशचद्र बोस का नाम आप लोगोंने सुना होगा। ये ससार के बहुत बडे वैज्ञानिकों में गिने जाते है। इन का यूरोप अमेरीका आदि देशों में बडा मान किया जाता है। ससार के कई धुरधर वैज्ञानिक इन को अपना गुरु माननेमें अपना सौभाग्य समझते हैं। इन्होंने एक बार ' वनस्पति में जीव है ' इस का प्रयोग बम्बईमें बतलाया था। दर्शकों

की फीस ४०) रु थी। लोकमान्य तिलक इस जलसेके प्रेसिडेण्ट थे। लोगोंकी भीड बहुत ज्यादा थी। ४०) टिकट के देनेपर भी लोगोंको जगह नहीं मिलती थी। जगदीश बाबू जिस समय अपना प्रयोग दिखाने लगे उस समय सामने की लाइनमें पौधों के गमले रक्खे। उन गमलोंके आगेकी तरफ काचके बडे बडे तखते लगाये। फिर सूक्ष्मदर्शक यत्रको योग्य स्थान पर सजाकर उपस्थित जन समुदायसे कहा कि आप लोग सामने देखिये, मैं इन पौधोंको खुश करता हूँ। इतना कह कर बोस बाबू पौधोंको हर्षोत्पादक शब्दोंमें सम्बोधन कर उनकी तारीफ करने लगे। ज्यों ज्यों तारीफ करते गये त्यों त्यों वे पौधे, जैसे किसी आदमीकी स्तुति करने पर वह आदमी खुश होता है उसी प्रकार खुश होकर फूलने लगे। पर जब इन्होंने उनकी निंदा करनी शुरू की, खराब शब्द उनके लिये प्रयोग करने लगे तो वे पौधे मुरझाने लगे। लोगोंको बडा आश्चर्य हुआ उनको विश्वास होगया कि वृक्षोंमें जीव होता है।

बोस बाबू इतना ही करके न रह गये पर उन्होंने वृक्षोंमें स्नायु जाल है, और वह मनुष्यों की तरह स्पन्दित होता है, इसको भी सिद्ध कर बतलाया।

ये एक-दो प्रयोग ४०) रु खर्च करने पर मालूम पडे पर आप जैन सिद्धान्त के लघुदडक नामक एक थोकडेको सीखकर साइन्स का कितना ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

इन वैज्ञानिकोंने जिस प्रकार वनस्पतिमें जीव सिद्ध किया है इसी प्रकार धातुओं में भी सिद्ध किया है।

इनका साइन्स अभी अपूर्ण है। पर हमारे अरिहन्तोका साइन्स बहुत बढा चढा है। यहा तक पहुचनेमें न जाने इनको कितना समय लगेगा इन्होंने अभी एक अशकी खोजकी है पर हमारे शास्त्रोंने इनके शरीर

अवगाहना आदि का भी /उल्लेख कर दिया है। ये शास्त्र आजकल के प्रयोगोंको देखकर नहीं लिखे गये पर हजारों वर्ष पूर्व के लिखे हुए हैं।

वनस्पतिमें एक इन्द्रिय मानी जाती है। यहा पर कई भाई शका कर सकते है कि जब इनमें एक इन्द्रिय है, कान आदि तो है ही-नहीं, फिर निंदा स्तुति का ज्ञान किस प्रकार करते होंगे ?

जैन शास्त्र के 'आचाराग' 'विशेष आवश्यक सूत्र' तथा 'ठाणाग सूत्र' की टीका में इसका बहुत अच्छा खुलासा किया गया है, वहां देखना चाहिये ।*

हाल के विज्ञानने वनस्पति, जल आदि मे जीवोंकी सत्यता प्रगट की, पर अग्नि वायु आदि में अभीतक नहीं कर सका इससे हमको निराश न हो जाना चाहिये। कारण हम पहलेही कह चुके है कि यह अभी तक अपूर्ण है। सम्भव है यह अपनी इसी प्रकार की कोशिश के बल से किसी दिन इस सत्य तक भी पहुँच जाय।

प्यारे मित्रों! जब वनस्पति आदि एकेन्द्रिय जीव भी सुख दु ख का अनुभव करते है और दु खको न चाहकर सुखको पसन्द करते हैं तब अन्य प्राणी भी यही चाहते होंगे, क्या आपको अब भी इस बातमें शका रह सकती है?



* यहा एकेन्द्रिय जीवों के भी भावरूप पाचों इन्द्रियों का क्षयोपशम बतलाया है। उपकरण इन्द्रिय एकही होने से उन्हें एकेन्द्रिय कहे है

हिंसा किसे कहते है।

महा पुरुषो की वाणि, उनका किया हुआ वर्णन, पीछे के लोगों का मार्गदर्शक है। वह बतलाता है, अमुक काम करने से तुम्हारी हानि होगी और अमुक से लाभ।

साधारण पुरुषों से जिनमें महाशक्ति होती है उसे महापुरुष कहते है। महापुरुष बातों से नहीं होते पर उस के बनने के लिये बडी तपस्या करनी पडती है। इनके मार्ग में कई कष्ट आ उपस्थित होते है पर फिरभी सत्य के मार्ग से नहीं चूकते।

परीक्षा करनेवाला सोने को तपाता है, काटता है, कसौटीपर कसता है, फिर मालूम करता है कि यह सोना है या नहीं। इसी प्रकार महापुरुषों की भी परीक्षा होती है। इन के परीक्षक देवता और इन्द्र यद्यपि इनकी परीक्षा लेने आते हैं फिर भी सच्चे महापुरुषों के सामने उनकी ही परीक्षा हो जाती है।

मित्रों! महापुरुषों के अनुभवको ही शास्त्र कहते हैं। महापुरुषोंने जिस बात को बडे आत्मभोग से समझी उनके प्रताप से उन वस्तुओ का ज्ञान हम सहज से कर सकते है।

जैसे खेती करने वाले सब नहीं होते पर उस का लाभ सब को मिलता है, वैसे ही आत्मा का पूरा दमन किया होगा क्रोध, मान, माया, लोभ, कषायो को वश किया होगा, दया की भावना रगरग में रमाई होगी, परमात्मा में लीन हो गये होंगे, 'शास्त्र' ऐसे ही महापुरुषों के फरमाये हुए हैं। ऐसे शास्त्र अपन परूप नहीं सकते पर उनका उपयोग कर सकते हैं।

आकाश में गरुड पक्षी के बराबर पतगिया नहीं उड सकता, पर उडने का अधिकार समान है। उसी प्रकार उचे महात्मा लोग शास्त्रों का

मंथन कर जितना लाभ उठा सकते हैं उतना अपन नहीं, पर फिरभी उस पतगियों की माफिक अपने हक्को काम में लाना चाहिये।

अपने जैसे अल्पज्ञानी जीवोंके लिये, यदि ये शास्त्र न होते तो अपने को ऐसा ज्ञानका लाभ कुछभी नहीं होता।

भाइयों ! आप लोग शास्त्र को समझकर उनके बतलाये हुए मार्ग का अनुसरण करेंगे तभी आपको उनकी (महात्माओंकी) तरह आनन्द मिलेगा।

किसान खेती कर अनाज पेदा करता है। उस अनाज से वह अपनी भूख मिटाता है। क्या उसी अनाजसे दूसरोंकी भूख नहीं मिट सकती ? महात्मा पुरुषोंने ये शास्त्र रचे हैं, जब उनको इससे लाभ पहुचा तब क्या अपनेको नहीं पहुँच सकता ?

'जरूर पहुँच सकता है।'

जिस ज्ञानने उनको आत्मस्वरूप परमात्माके दर्शन कराये विश्वास रखिये यदि उसका अपन उपयोग करेंगे तो अपनेको भी करायेगा।

उन महापुरुषोंको शास्त्र प्रगट करनेमे एक रहस्य जरूर था। वह यह कि 'जगतका उपकार करना।' इसको भी कोई लोभ कहते हैं पर यह लोभ कैसा ? जैसे वृक्ष फलता है वैसा।

मित्रों ! क्या उन महपुरषोंकी वाणि अपने अकेलोंके लिये ही है ? नहीं नहीं, जैसे वृक्षके फल हरेकके लिये हैं वैसेही शास्त्र हरेकके लिये हैं, उससे हरेक तिर सकता है।

आप कह सकते हैं, महाराज ! सिद्धान्त किसका सत्य मानना चाहिये ? ससारमें जैन, वैष्णव, क्रिश्चियन, मुसलमान सभी के सिद्धान्त प्रचलित हैं और सभी यही कहते हैं कि हमारे सिद्धान्त को मानो, तिर जाओगे। किस सिद्धान्त पर चलना चाहिये।

मैं पूँछता हूँ कि मुसलमान के बनाये कपडे से आपकी लज्जा निवारण होगी या हिन्दू के बनाये कपडेसे ?

(उत्तर) ' दोनों के कपडे से । '

ब्राह्मण की खेती से पैदा हुए अन्न से आप लोगों की भूख मिटेगी और शूद्र के द्वारा की हुई खेतीसे ?

(उत्तर) ' दोनों से मिट सकती है । '

प्यारे मित्रों ! आप लोग मूल सिद्धान्त पर ध्यान दिया कीजिये । इससे सारी शकाएं दूर हो जायेंगी । जैन हो या वैष्णव, क्रिश्चीयन हो या मुसलमान सब के सिद्धान्तों का साररूप मक्खन अर्थात् तत्व-ज्ञान लेने से जो सत्य है वह मिल जायगा ।

बडे बडे ग्रन्थोंमें जो बातें हैं महात्मा पुरुषोंने अपने ज्ञानके लिये थोडे शब्दोंमें उनको समझादी हैं, जैसे —

> दया धर्म को मूल है, पाप मूल अभिमान ।
> तुलसी दया न छोडिये, जब लग घट में प्राण ॥

धर्म का मूल क्या है ?

' दया । '

दया किस लिये ? दया क्यों समझनी चाहिये ? क्या जैन-शास्त्र कहता है इसलिये ? क्या वेदान्त या वैष्णव कहते हैं इसलिये ?

मित्रों ! यह प्रश्न और किसी से न पूछो । अपनी आत्मा से पूछो । दया आपको क्षण क्षणमें नजर आयगी और वह जरूरी है इसीलिये यह धर्मका मूल मानी गई है । इसके लिये शास्त्र के प्रमाण की कोई जरूरत नहीं ।

आपके सामने एक आदमी चमकती हुई नगी तलवार लेकर खडा है वह आपको मारना चाहता है। दूसरा मनुष्य आपकी रक्षाकी चेष्टा करता हुआ उसे इस बातका उपदेश देता है कि प्यारे! इसको क्यों मार रहा है? वह जबाब देता है कि 'इसे मारना मेरा धर्म है, मनुष्य की हत्या करने से पुण्य होता है, ऐसा मेरा शास्त्र कहता है।

बतलाइये, इन दोनोंमें से आपको प्यारा कौन लगेगा?

'रक्षा करनेवाला।'

जो मनुष्य तलवार के द्वारा आपके जीवन का अन्त करना चाहता है, वह यह कृत्य करता तो है अपने शास्त्रके अनुसारही, पर आप उस शास्त्रको कैसा मानेंगे?

'रद्दीकी टोकरीमें डालने लायक।'

क्यों?

'इसलिये कि वह अपनी आत्माके विरूद्ध है।'

बस, आत्मा के विरुद्ध जो जो बातें हों, प्यारे मित्रों! वही अधर्म है। उनका करना पाप है। इसलिये उन कार्योंकी मनाई की गई है। महाभारत के अन्दर भीष्म पितामहने यही बात कही है—

'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।'

मित्रों! दया केवल मनुष्योंमें ही नहीं होती परन्तु इसका स्थूल रूप दूसरे प्राणियोंमें भी देखने में आता है। सिंहनी दूसरोंपर हमला करती है, क्या वह अपने बच्चे पर करती है?

'नहीं।'

'क्यों? इसलिये कि उसमें उसके प्रति दया है।'

'साँप काटने से मनुष्य कई बार प्राण मुक्त हो जाते है, क्या सभी साँप काटते है ?'

'नहीं।'

उनमें भी दया का किंचित भाव है नहीं तो सबको काट ,खाय और सब मर जांय।

मनुष्य मनुष्य में भी दया है नहीं तो एक दूसरेको मार डाले।

माता बच्चेको सूखेमें सुलाती है पर स्वय गीले पर सोती है।

क्यों ? क्या वह बचा जन्मता ही उसे कमा कर देता है ? या और कुछ सहायता करता है ?

'नहीं।'

तब माता ऐसा क्यों करती है ?

इसीलिये कि उसमें दया है।

मित्रों ! दयाहीन प्राणी हिंसक, क्रूर, पापी कहा जाता है। अतएव दया करना सबका मुख्य कर्तव्य होना चाहिये। याद रखिये दया का दूसरा नामही अहिंसा है' और अदयाका नामही हिंसा है।

मोटी समझ से 'हिंसा' वह कहलाती है जिस कृत्य के द्वारा किसी प्राणीके जीवनका अन्त किया जाय।

प्रश्न उठ सकता है कि आत्मा जब अजर अमर अविकल है त्रिकालमेंभी मारने से नहीं मरती तब हिंसा कैसी ? जो वस्तु नाश नही होती उसका नष्ट होना कैसा ?

मित्रों ! लोगोंके विचार आज सकुचित हो रहे हैं जब इनके विचार विस्तृत हो जायेंगे तब हिंसाके सच्चे स्वरूप का ज्ञान इनमें फैल जायगा। धर्म के विषय में दुनियामें जो कुतर्कें फैल रही हैं, अर्थमें जो खींचा

तानी की जाती है, वास्तविक ज्ञान के फैलनेपर यह सब अन्धाधुंदी मिट जायगी ।

भाइयों ! आत्मा अविनाशी है तभी तो हिंसा लगती है । यदि इसके विपरीत आत्माकी अनात्मा बन जाती हो तो हिंसा किसे लगे ! मारनेवालेकी आत्मा नष्ट होगई और मरनेवालेकी आत्मा का नाश हो गया तब तो हिंसा अहिंसा का सवालही नहीं रहा । आत्मा अजर अमर अविनाशी है, तुम्हारीही तरह दूसरोंकी है । आत्मा के पास आयुष्य कर्म है उसको अकालमें जुदा कर देना, यानी आत्मा से प्राणोंका अलग कर देना उसीका नाम हिंसा है । जैसे घासलेट तैल, जो रातभर लालटेन में जल सकता है उसको दियासलाई बतलाकर एकदम भबका कर जला डालना, उसे 'अकाल में नष्ट कर दिया' कहा जाता है । इसी प्रकार आत्मा के पास आयुष्य कर्म होते हुए भी छुरी तलवार आदि से दुःख पहुचाकर अन्त कर देना उसे हिंसा कहते है ।

मित्रों ! मोटी दृष्टिसे जो हिंसा कही जाती है उसे आप समझ गये । पर जैन-शास्त्र इससे भी गहरी बात बतलाता है कि किसी प्राणि को मन वचन कर्मसे किसी प्रकारका दुःख पहुचाना हिंसा है । इससे भी गहराईके साथ कहता है कि 'करना' 'कराना' और 'किये हुएको अच्छा मानना' मनसे वचनसे और कर्मसे, वह भी हिंसाही है ।

और समझिये । यदि आप किसीको गाली देकर किसीके मन दुखानेका प्रयत्न करते हैं तो समझिये कि मैं एक प्रकारकी हिंसा कर रहा हूँ । यदि आप किसीका अपमान कर रहे हैं तो भी समझ लीजिये कि मैं एक प्रकारकी हिंसा का भागी बन रहा हूं । यदि आप किसीको लढाई झगडा करनेकी सलाह देते हैं तो समझिये कि मेरा यह कृत्य एक प्रकारकी हिंसा में सामिल है । इतनाही नहीं, मनसे भी किसीका बुरा समझना यह भी हिंसा है ।

इन तमाम हिंसाओंके करनेवाले प्राणियोंको यथा समय बदला चुकाना पडता है।

शास्त्र में 'तंदूलमच्छ' की एक जगह बात आई है। लिखा है कि तंदूलमच्छ एक मगर के नाक की अणीपर समुद्र में बैठा था। यह जन्तु अंगुलीके कई हजारवें हिस्सेकी बराबर होता है। एक दिन मगर मुँह फैलाकर सुख से जलमें बैठा हुआ था। सैकडों मच्छियें उसमें आती और निकल जाती। तंदूलमच्छ ने सोचा कि यदि मैं मगर होता तो इनमें से एक को भी जिंदी न छोडता, सबको स्वाहा कर जाता। तंदूल मच्छने उस समय किया कराया कुछ नहीं, केवल उसकी इसी पापमयी भावनासे नरक में गया और असख्य वर्षोंतक दु ख उठाता रहा।

प्रिय मित्रों! जिस प्रकार मनमें किसी का बुरा चिंतवना हिंसा में गिना गया है वैसेही प्रगट रूप में किसी की निंदा करना यह भी हिंसा के बराबर है। इसके प्रमाण में महाभारत में भी एक उदाहरण मिलता हैं।

जिस समय अर्जुन त्रिगर्तोंसे वीरता पूर्वक युद्ध कर रहे थे, उन्हें देख कर्ण ने पाण्डव सैन्य पर भयकर रूप से आक्रमण किया। दोनों ओर से अस्त्रशस्त्रों की वर्षा होने लगी। वीरोंकी हुँकार ध्वनि से आसमान गूँज उठा। कर्ण के बाण अनेकों पाण्डव सैनिकों को धराशायी करने लगे। उधर अर्जुनने त्रिगर्त-राज सुशर्मा को मार गिराया। भीमने दुर्योधन के छ भाईयोंको सदाके लिये भूशायी कर दिया। यह देख, कर्ण ने युद्धिष्ठिर पर ऐसा भयानक आक्रमण किया कि उनकी बुरी दशा हो गई। रणक्षेत्रसे भाग चले। उन्हें भागते देख, सेनाकेभी पैर उखड गये। भीम, सात्यकि और धृष्टद्युम्नने उन्हें बडे २ उत्साहवर्धक शब्दोंसे उत्साहित कर रोक रखा। फिर दोनों पक्ष में जमकर लडाई होने लगी। कर्ण के बारबार आक्रमण से भीमको बडा क्रोध चढ आया।

तानी की जाती है, वास्तविक ज्ञान के फैलनेपर यह सब अन्धाधुंद मिट जायगी ।

भाइयों ! आत्मा अविनाशी है तभी तो हिंसा लगती है। यदि इसके विपरीत आत्माकी अनात्मा बन जाती हो तो हिंसा किसे लगे? मारनेवालेकी आत्मा नष्ट होगई और मरनेवालेकी आत्मा का नाश हो गया तब तो हिंसा अहिंसा का सवालही नहीं रहा । आत्मा अजर अमर अविनाशी है, तुम्हारीही तरह दूसरोंकी है। आत्मा के पास आयुष्य कर्म है उसको अकालमें जुदा कर देना, यानी आत्मा से प्राणोंका अलग कर देना उसीका नाम हिंसा है। जैसे घासलेट तैल, जो रातभर लालटेन में जल सकता है उसको दियासलाई बतलाकर एकदम भवका कर जला डालना, उसे 'अकाल में नष्ट कर दिया' कहा जाता है। इसी प्रकार आत्मा के पास आयुष्य कर्म होते हुए भी छुरी तलवार आदि से दुःख पहुचाकर अन्त कर देना उसे हिंसा कहते है।

मित्रों ! मोटी दृष्टिसे जो हिंसा कही जाती है उसे आप समझ गये। पर जैन-शास्त्र इससे भी गहरी बात बतलाता है कि किसी प्राणि को मन वचन कर्मसे किसी प्रकारका दुःख पहुचाना हिंसा है। इससे भी गहराईके साथ कहता है कि 'करना' 'कराना' और 'किये हुएको अच्छा मानना' मनसे वचनसे और कर्मसे, वह भी हिंसाही है।

और समझिये। यदि आप किसीको गाली देकर किसीके मन दुखानेका प्रयत्न करते हैं तो समझिये कि मैं एक प्रकारकी हिंसा कर रहा हूँ। यदि आप किसीका अपमान कर रहे हैं तो भी समझ लीजिये कि मैं एक प्रकारकी हिंसा का भागी बन रहा हूं। यदि आप किसीको लढाई झगडा करनेकी सलाह देते हैं तो समझिये कि मेरा यह कृत्य एक प्रकारकी हिंसा में सामिल है। इतनाही नहीं, मनसे भी किसीका बुरा समझना यह भी हिंसा है।

इन तमाम हिंसाओंके करनेवाले प्राणियोंको यथा समय बदला चुकाना पडता है।

शास्त्र में 'तदूलमच्छ' की एक अजब बात आई है। लिखा है कि तंदूलमच्छ एक मगर के नाक की अणीपर समुद्र में बैठा था। यह जन्तु अगुलीके कई हजारवें हिस्सेकी बराबर होता है। एक दिन मगर मुँह फैलाकर सुख से जलमें बैठा हुआ था। सैकडों मच्छियें उसमें आती और निकल जाती। तदूलमच्छ ने सोचा कि यदि मैं मगर होता तो इनमें से एक को भी जिंदी न छोडता, सबको स्वाहा कर जाता। तदूल मच्छने उस समय किया कराया कुछ नहीं, केवल उसकी इसी पापमयी भावनासे नरक में गया और असख्य वर्षोंतक दु ख उठाता रहा।

प्रिय मित्रों! जिस प्रकार मनमें किसी का बुरा चिंतवना हिंसा में गिना गया है वैसेही प्रगट रूप में किसी की निंदा करना यह भी हिंसा के बराबर है। इसके प्रमाण में महाभारत में भी एक उदाहरण मिलता हैं।

जिस समय अर्जुन त्रिगर्तोंसे वीरता पूर्वक युद्ध कर रहे थे, उन्हें देख कर्ण ने पाण्डव सैन्य पर भयंकर रूप से आक्रमण किया। दोनों ओर से अस्त्रशस्त्रों की वर्षा होने लगी। वीरोंकी हुँकार ध्वनि से आसमान गूँज उठा। कर्ण के बाण अनेकों पाण्डव सैनिकों को धराशायी करने लगे। उधर अर्जुनने त्रिगर्त-राज सुशर्मा को मार गिराया। भीमने दुर्योधन के छ भाईयोंको सदाके लिये भूशायी कर दिया। यह देख, कर्ण ने युद्धिष्ठिर पर ऐसा भयानक आक्रमण किया कि उनकी बुरी दशा हो गई। रणक्षेत्रसे भाग चले। उन्हें भागते देख, सेनाकेभी पैर उखड गये। भीम, सात्यकि और धृष्टद्युम्नने उन्हें बडे २ उत्साहवर्धक शब्दोंसे उत्साहित कर रोक रखा। फिर दोनों पक्ष में जमकर लडाई होने लगी। कर्ण के बारबार आक्रमण से भीमको बडा क्रोध चढ आया।

वे कौरव सेना में गदा लेकर घुस पड़े और सैकड़ों हाथियों और गज सेनाके नायकों को मार-मारकर ढेर करने लगे। जैसे प्रचंड वायुके झोंके से मेघोंकी घनी घटा भी उड़ जाती है वैसे ही भीम के प्रचंड पराक्रम के आगे कौरव सेना तितर बितर होने लगी।

उधर अर्जुन त्रिगर्तोंको मारकर अपने पक्षमें चले गये। वहाँ आकर उन्होंने देखा कि सेनामें युधिष्ठिर नहीं है और अकेले भीमही कालान्तक यमकी भांति शत्रुकुलका नाश कर रहे हैं। तब उन्होंने भीमसे पूछा—

' भाई ! धर्मराज कहाँ है ? '

भीमने लड़ते ही लड़ते उत्तर दिया—

' वे कर्ण के बाणोंसे पीड़ित हो अपने शिविर में चले गये हैं। '

यह सुन अर्जुन भी उधर ही चल पड़े।

कृष्ण और अर्जुन को समर क्षेत्र से लहू-लुहान शरीरसे लिये हुए लौटते देखकर युधिष्ठिरने समझा, कि वे कर्णको मारकर चले आ रहे हैं। उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से पूछा—

' क्यों भाई, तुमने कर्णको किस तरह मारा ? '

अर्जुन—' महाराज, मैं तो अभी त्रिगर्त लोगोंको मारकर चला आ रहा हूं। मुझे, आपको समर क्षेत्रमें न देखकर बड़ी चिंता हुई, इसीलिये चला आ रहा हूँ। अब मैं कर्ण की ओर चलता हूँ और उसे बिना मारे न लौटूँगा। '

कर्ण से हारे हुए उदास युधिष्ठिर को अर्जुन की ये बातें सुन, बड़ा ही दुःख हुआ। वे अपने आपे में न रहे। कर्ण को इन लोगोंने

अभी तक नहीं मारा, यह जानकर उनका हिताहित ज्ञान लुप्त हो गया। उन्होंने बडे क्रोध भरे शब्दोंमें अर्जुन और उनके गांडीव धनुपको धिक्कार दिया। उनकी कठोर वज्र समान वाणि अर्जुन से न सही गई, वे खड्ग लेकर अपने परम पूज्य भाईको मारने के लिये तैयार होगये। जिनके नेत्रोंके इशारे मात्र पर वे ससारको न्यौछावर कर देने के लिये सदा प्रस्तुत रहते थे तथा जिनकी आज्ञाका पालन करते हुए ससार में जहाँ तक कष्ट और दु खकी पराकाष्ठा है, वहाँतक उठा चुके थे और उठा रहे थे। समय भी क्या ही विचित्र परिवर्तन शील रहे है! अक्रोध मनुष्य के मन का कैसा रग विरगा व्यवहार है!!

अर्जुन को इस प्रकार दुष्कृत्य करते देख, कृष्णने झटपट उनका हाथ पकड लिया और कहा—

"अर्जुन! तुम यह कैसी मूर्खता कर रहे हो? क्या तुम्हारी बुद्धि मारी गई है? जो युधिष्टिर तुम्हें पुत्र के समान प्यार करते हैं, जिनका तुमने आज तक कभी अनादर नहीं किया, उन्ही को मारने के लिये तैयार हो रहे हो! जरा सोचो तो सही क्या युधिष्टिरके मारने पर तुम जीवित रहना पसन्द करोगे? क्या वडों की मान प्रतिष्ठा का तुम्हें तनिक भी ध्यान नहीं रहा? मालूम होता है कि तुम पागल हो गये हो।

श्रीकृष्ण की बाते सुन, अर्जुन के सिर से तत्काल क्रोध का भूत उतर गया। वे लज्जित होकर सिर झुकाये खडे हो रहे। कुछ देर के बाद हाथ जोडकर कहने लगे—'भगवन्! आपने ठीक कहा। मेरी बुद्धि सचमुच मारी गई थी, परन्तु मैं लाचार था। मैंने प्रतिज्ञा की थी कि जो मेरे इस गांडीव धनुप की निंदा करेगा, उसे मैं तत्काल मारूँगा। भाई साहवने इसका कुछ भी विचार न कर मेरे धनुष्यको धिक्कारना आरम्भ कर दिया, इसीलिये मैं भी क्रोध के मारे अधा हो गया। यदि

वे मुझे लाख गालिया देते, तो भी मैं कुछ न बोलता। उनकी गालियों झिडकियों और धिक्कारों को मैं आशीर्वाद समझता हू। अब आपही कहिये, पूज्य भ्राता के ऊपर हाथ उठाकर मैंने जो महापाप किया है उसका प्रायश्चित क्या है? मुझे तो आत्मघात ही एक मात्र प्रायश्चित मालूम होता है। अब मैं इस अधम शरीर को न रक्खूँगा।"

यह कह कर अर्जुन ने ज्योंही अपनी गर्दन तलवार से उडा देनी चाही, त्योंही श्रीकृष्णने खड्ग समेत उनका हाथ पकड लिया और खड्ग को छीन कर दूर फेंक दिया।

अर्जुन की इस धर्मशीलता से धर्मराज युद्धिष्ठिर बडे प्रसन्न हुए— उनके मनमें जो थोडी बहुत ग्लानि पैदा हुई थी, वह मिट गई। उन्होंने अर्जुन को स्नेह पूर्वक आलिंगन करते हुए कहा—

'प्यारे पार्थ! भाई अर्जुन!! मैं वास्तव मे दोषी हू। तुम्हारा क्रोध अन्याय युक्त नहीं था। मैने व्यर्थ ही में तुम्हारी तथा तुम्हारे गाडीव, धनुष की निंदा की, तुम अपनी प्रतिज्ञा पालन करो। क्षात्रिय प्रतिज्ञा भ्रष्ट कभी नहीं होता।'

इतना कह युधिष्ठिर ने अपनी गर्दन आगे कर ली।

अर्जुन असमजस में पड गये। एक तरफ धर्म सकट, और दूसरी तरफ गांडीव धनुष की प्रतिज्ञा!

श्रीकृष्ण—अर्जुन! श्रेष्ठ पुरुष का अपमान करना उनकी मृत्यु के बराबर है इसलिये यद्यपि तुम्हें बडे भाईका अपमान न करना चाहिये पर इस समय इनका अपमान करो, यह इनके मृत्यु बराबर होगा।

श्रीकृष्ण की बात सुनकर अर्जुन उनके चरणों में झुक पडा और बोला—वाह मुरारि, आपके विना ऐसी सलाह कौन देता! आज मैं

हिंसाके भेद
और
पहले व्रत का सूत्रपाठ से विस्तार।

सूत्र—थूलग पाणाइवायं समणोवासओ पच्चखाइ, से पाणाइवाए दुविए पन्नत्ते, तं जहा-संकप्पओ अ आरम्भओ अ, तत्थ समणोवासओ सकप्पओ जावज्जीवाए पच्चक्खाइ, नो आरम्भओ।

टीका—द्वीन्द्रियादयः स्थूलत्वं चैतेषा सकललौकिक जीवत्व प्रसिद्धे, एतदपेक्षयैकेन्द्रियाः (णां) सूक्ष्माधिगमेना (न) जीवत्व सिद्धेरिति, स्थूला एव स्थूलकास्तेषां प्राणा —इन्द्रियादय तेषाप्रतिपातः स्थूलप्राणातिपात. त श्रमणोपासक श्रावक इत्यर्थः प्रत्याख्याति, तस्माद् विरमत इति भावना। स च प्राणातिपातो द्विविध- प्रज्ञप्त तीर्थंकर गणधरैर्द्विविधः प्ररूपित इत्यर्थ 'तद्यथे'-त्युदा हरणोपन्यासार्थं, सकल्पजश्चारम्भजश्च, सकल्पाज्जात' संकल्पजः, मनस- सकल्पात् द्वीन्द्रियादेप्राणिन. मांसास्थिचर्मखवालदन्ताद्यर्थं व्यापादयन्तो भवति, आरम्भाज्जातः आरम्भज' तत्रारम्भोहलकृतावखननस्तव (लवन) प्रकारस्तस्मिन् शख चदणकापिपीलिकाधान्यगृहकारकादि सघट्टन परितापद्राव लक्षण इति, तत्र श्रमणोपासकः संकल्पतो यावज्जीवयापि प्रत्याख्याति, न तु यावज्जीवयैव नियमत इति, 'नारम्भज' मिति, तस्यावश्यतयाऽऽरम्भसद्भावादिति, आह—एव सकल्पत किमिति सूक्ष्म प्राणातिपातमपि न प्रत्याख्याति? उच्यते एकेन्द्रियादि प्रायो दुष्परिहारा. सद्मवासिनां सकल्पैव सचित्त पृथ्व्यादि परिभोगात्।

हिंसा के कारण ।

प्रिय मित्रों ! हिंसा किन किन कारणों से होती है इसका निवरण शास्त्र में आया है। यदि उन तमाम कारणों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया जाय तो बहुत समयकी जरूरत है अतः संक्षेप में बतलाया जाता है।

ससार में करोडों ऐसे प्राणि विद्यमान हैं, जो हमें दृष्टिगत नहीं होते। उनका पुज हमारे शरीर के चारों तरफ चक्कर काटता है पर हम उन्हें देख नहीं सकते। ऐसे प्राणियोंकी हिंसा, अनजान में चलते, फिरते, उठते, बैठते, श्वासलेते, किसी वस्तु को इधर उधर रखते एव आग जलाते समय हो जाती है।

चींटी आदि जिन प्राणियों को हम आंखोंसे देख सकते हैं, उनकी भी प्राय अनजान में इसी प्रकार हिंसा हो जाती है। रहे बडे प्राणी, उनकी हिंसा मनुष्य क्यों करता है? इसके उत्तर में शास्त्र कहता है कि कोई मांसके लिये, कोई हड्डियों के लिये, कोई चमडे के लिये, कोई चर्बी के लिये, कोई दांतों के लिये, कोई रक्तके के लिये, कोई बालोंके लिये इसी प्रकार और भिन्न भिन्न स्वार्थों के कारण बिचारे पशुओंकी हिंसा की जाती है।

किसी वस्तुको सडा कर उसका कोई पदार्थ तैयार करना यह भी एक हिंसाका कारण है। क्यों कि सडानेपर उस वस्तुमें सैकडों सूक्ष्म जीव पैदा होते हैं। जैसे शराब आदि। ऐसी चीजें काम में लानेवाले उन जीवों की हिंसा के कारण बनते हैं तथा उन जीवों के मरने पर दुर्गंधि आदि फैलकर जो रोगादि फैलते है यह भी हिंसा का ही साधन माना गया है।

हिंसाके भेद
और
पहले व्रत का सूत्रपाठ से विस्तार ।

सूत्र—थूलग पाणाइवाय समणोवासओ पञ्चखाइ, से पाणाइवाए दुविए पन्नत्ते, त जहा—संकप्पओ अ आरम्भओ अ, तत्थ समणोवासओ सकप्पओ जावज्जीवाए पचक्खाइ, नो आरम्भओ।

टीका—द्विन्द्रियादयः स्थूलत्वं चैतेषां सकललौकिक जीवत्व प्रसिद्धे, एतदपेक्षयैकेन्द्रियाः (णां) सूक्ष्माधिगमेना (न) जीवत्व सिद्धेरिति, स्थूला एव स्थूलकास्तेषां प्राणा—इन्द्रियादय' तेपामतियातः स्थूलप्राणातिपात. त श्रमणोपासक श्रावक इत्यर्थः प्रत्याख्याति, तस्माद् विरमत इति भावना । स च प्राणातिपातो द्विविध. प्रज्ञप्त तीर्थंकर गणधरैर्द्विविधः प्ररूपित इत्यर्थ 'तद्यथे'त्युदा हरणोपन्यासार्थ., सकल्पजश्चारम्भजश्च, संकल्पाज्जात' सकल्पजः, मनस. सकल्पाद् द्वीन्द्रियादेप्राणिन. मांसास्थिचर्मनखवालदन्ताद्यर्थं व्यापादयन्तो भवति, आरम्भाज्जातः आरम्भज तत्रारम्भोहलदतारवननस्तव (लवन) प्रकारस्तस्मिन् शख चदणकपिपीलिकाधान्यगृहकारकादि सघट्टन परितापद्राव लक्षण इति, तत्र श्रमणोपासकः संकल्पतो यावज्जीवयापि प्रत्याख्याति, न तु यावज्जीवयैव नियमत इति, 'नारम्भज' मिति, तस्यावश्यतयाऽऽरम्भसद्भावादिति, आह—एव सकल्पत किमिति सूक्ष्म प्राणातिपातमपि न प्रत्याख्याति? उच्यते एकेन्द्रियादि प्रायो दुष्परिहारा. सद्मवासिना सकल्पैव सचित्त पृथ्व्यादि परिभोगात्।

भावार्थ—सकल आबालवृद्ध पुरुषों द्वारा प्रसिद्ध जो द्वीन्द्रियादि जीव उनका 'स्थूल' शब्दसे यहां ग्रहण होता है। उसकी अपेक्षा सूक्ष्मबुद्धिसे जानने योग्य एकेन्द्रिय जीवको लौकिकमें जीवपनेसे प्रसिद्ध नहीं इसलिये उनको सूक्ष्म कहा है। अतएव लौकिक प्रसिद्ध जो स्थूल जीव उनका जो इन्द्रियादिक प्राण उसका नाश करना उसको स्थूल प्राणातिपात कहते हैं। उसको श्रमणोपासक श्रावक त्यागता है अर्थात् उस स्थूल हिंसासे निवर्तता है। यह प्राणातिपात तीर्थंकर गणधर भगवान्ने दो प्रकारका बतलाया है। यह इस तरह है—एक सकल्पज और दूसरा आरम्भज। सकल्पसे पैदा होनेवाले अर्थात् मनके सकल्प द्वारा द्वीन्द्रियादिक प्राणियोंको मास, हड्डी, चर्म, नख, केश, दांत आदिके वास्ते मारना उसे सकल्पज कहते हैं। और आरम्भसे पैदा होनेवाले अर्थात् हल दतेली आदि से पृथ्वी खोदने आदि आरम्भमें शंख चदणक (जीव विशेष) चींटी आदि धान्य निष्पत्तिकरण अथवा घर बनाने आदिमें सतापना विराधना होती है उसको आरम्भज कहते हैं। इन दोनों हिंसामें से श्रमणोपासक श्रावक सकल्पज हिंसाका यावज्जीवनका भी त्याग करता हैं परतु कोई अल्पकालका भी कर सकता है। हा, आरम्भजा हिंसाका त्याग श्रावकको सम्पूर्ण रीतिसे नहीं होता है। क्योंकि इसको गृहकार्यमें उस हिंसाका सद्भाव होनेसे। यहा कोई शका करता है कि जैसे सकल्प से स्थूल प्राणातिपात का त्याग करता है वैसे ही सूक्ष्म प्राणातिपातका भी त्याग क्यों नहीं करता? उत्तर है—गृहवासियोंको एकेन्द्रियोंकी हिंसा प्राय दुष्परिहार है क्यों कि वह सकल्प के द्वारा भी पृथ्वी आदिका परिभोग करता है।



पहले (अहिंसा) व्रत के अतिचार.

सूत्र—थूलग पाणाई वायवे रमणस्स समणोवासएण इमे पच अइयारा जाणियव्वा-तजहा बधे वहे छविच्छेदे ए अइभारे भत्त-पाण वुच्छेए।

(टीका)—अतिचार रहितमनुपालनीय, तथा चाह-'थूलगे'त्यादि, स्थूलक प्राणातिपात विरमणस्स विरतेरित्यर्थ श्रमणोपासकेनामी पञ्चाति-चारा' 'जाणियव्वा' ज्ञपरिज्ञया न समाचरितव्या'—न समाचरणीया, तद्य-थेत्युदाहरणोपन्यासार्थ, तत्र वधन वन्ध—सयमन रज्जुदामनकादिभि-र्हनन वध ताडन कसादिभि. छविः शरीरं तस्य छेद पाटन कर पत्रा-दिभि भरणभार अनीव भरण अतितार प्रभूतस्य पूगफलादे स्कन्ध पृष्ठ्यादिष्वारोपणमित्यर्थ भक्तअशनमोदनादिपान—पेयमुदकादि तस्य च व्यवच्छेद निरोधेऽदानमित्यर्थ एतान् समाचरन्नति प्रथमाणुव्रत तदत्राय तस्य विधि—

बन्धो दुविधो—दुप्पदाण चतुप्पदाण च, अट्ठाए अणट्ठाए य, अणट्ठाए न वट्टति वधेत्तु, अट्ठाए दुविधो—निरवेक्खे सावेक्खो य, णिरवेक्खो णेच्चन्य सघणित जं बधति सावेक्खो ज दाम गठिणो ज व सक्केति पलीवणगादि सु मुंचितु छिंदितु वा तेण ससरपासएण बन्धे वन्धं एव ताव चतुप्पदाण, दुपदाणपि दासो वा दासी वा चोरो वा पुत्तो वा ण पढतगादि जति वज्झति तो सावेक्खाणि वधितव्वाणि रक्खितव्वाणि य जधा अग्गिभया-दिसु ण विणस्सति ताणि किर दुपदचतुप्पदाणि सावगेण गेण्हि तव्वाणि जाणि अवद्धाणि चेव अच्छाति, वहो तधा चेव, वधोणाम तालणा अणट्ठाए, णिरवेक्खो णिरवेक्खो णिद्दय ताळेति, सावे-क्खो पुण पुव्वमेव भीतपरिसेणहोतव्व, मा हणण कारिज्जा,

जति करेज्ज ततो मम्मे मोत्तूण तावे लताए दारेण वा एक्कं दो तिण्णिवारे हत्थपाद कण्णणक्काइ णिद्दयत्ताए छिंदति, सावेक्खो गड वा अरुय वा छिंदेज्ज वा डहेज्ज वा, अतिभारो ण आरोवेतव्वो, पुव्वं चेव जा वाहणाए जीविया सा मोतव्वा, ण होज्जा अण्णा जीविता ताधे दुपदो जं सय उक्खिवति उत्तारेति वा भारं एवं वहाविज्जति, बइल्लाण जधा साभाविया ओ वि भारातो ऊणओ कीरति, हल सगडे सुवि वेळाए मुयति, आसहत्थी सुवि एवं विही, भत्त पाण वोच्छेदो ण कस्सइ कातव्वो, तिव्व छुहो मा मरेज्ज, तधेव, अणट्ठाए दोसा परिहरेज्जा, सावेक्खो पुणरोग णिमित्तं वा वायाए वा भणेज्जा अज्ज तेण देमित्ति, सतिणिमित्तं वा उववास कारावेज्जा, सव्वत्थाविजतणा जधा थूलग पाणातिवातस्स अतिचारो ण भवति तथा पयतितव्वं, णिरवेक्ख बंधादि सुय लोगो व घातादिया दोसा भाणियव्वा।*

---

* बन्धो द्विविधो—द्विपदाना चतुष्पदाना च अर्थायाऽनर्थाय च, अनर्थाय न वर्त्तते बन्धु, अर्थाय द्विविध निरपेक्ष सापेक्षश्च, निरपेक्षो यन्निश्चल बध्नाति बाढ, सापेक्षो यद्दामग्रन्थिना यच्च शक्नोति प्रदीपनकादिषु मोचयितु छेत्तुवा तेन ससरःपाशकेन बद्धव्य, एव तावत् चतुष्पदानां, द्विपदानामपि दासो वा दासी वा चौरो वा पुत्रो वाऽपठदादिर्यदि बध्यते तदा सापेक्षाणि बद्धव्यानि रक्षितव्यानि च यथाऽग्निभयादिषु न विनश्यन्ति, ते किल द्विपदचतुष्पदा श्रावकेण ग्रहीतव्या येऽबद्धा एव तिष्ठन्ति, वधोऽपि तथैव, वधो नाम ताडन अनर्थाय निरपेक्षो निर्दय ताडयति, सापेक्ष पुन पूर्वमेव भीतपर्षदा भवितव्य मा घात कुर्यात्, यदि कुर्यात् ततो मर्म मुक्त्वा तदा लतया दवरकेण वा एकशो द्विस्त्रिर्वारान् ताडयति, छविच्छेदोऽनर्थाय तथैव निरपेक्षो हस्तपादकर्ण नासिकादि निर्दयतया छिनत्ति, सापेक्षो गण्ड वा अरुर्वा छिन्द्याद्वा दहेद्वा, अतिभारो नारोपयितव्य पूर्वमेव या वाहनेनाऽऽजीविका सा मोक्तव्या, न भवेदन्या जीविका तदा द्विपदो य स्वयमुत्क्षिपति उत्तारयति वा भार एव वाह्यते, बलिवर्दानां यथा स्वाभाविकादपि भारादून क्रियते, हलशकटेष्वपि वेलाया मुञ्चति अश्वहस्त्यादिष्वप्येष एव विधि, भक्तपानव्यवच्छेदो न

पहला व्रत अतिचार रहित पालन करना चाहिये।

स्थूल प्रणातिपात से निवर्तनेवाले व्रतधारी श्रावकको पंच अतिचार जानने योग्य है परन्तु आचरण करने योग्य नहीं हैं।

पच अतिचार ये है—(१) बधन, (२) वध, (३) छविछेद, (४) अतिभार, (५) भत्तपाणि विच्छेद।

किसी रस्सी आदि से बाधना उसे 'बधन' कहते हैं।

चाबुक आदि से मारना उसे बध कहते हैं।

करोत आदि शस्त्रों से शरीर को फाडना उसे 'छविछेद' कहते है।

सुपारी नारीयल आदि भारको पशुके कधे, पीठ आदिपर शक्तिसे ज्यादा भरना उसे 'अतिभार' कहते है।

'भत्त' याने ओदन आदि खाने की चीज, और पाण याने पानी आदि तृषा मिटानेकी वस्तु, उसका विच्छेद कर देना अर्थात् भातपानी न देना, उसे 'भत्तपाणिविच्छेद' नामक अतिचार कहते हैं।

अतिचारो का विस्तृत भावार्थ।

बध दो तरहके है। दो पदों (मनुष्यादिको) का और चौपदों (गौ आदि) का। उसके भी दो भेद—अर्थ से बाधना और अनर्थ से बाधना। अनर्थ से वर्जित करें। अर्थ के दो भेद—निरपेक्ष और सापेक्ष। निरपेक्ष उसे कहते हैं जो अति गाढा बाध लगा दिया जाय। इसे अतिचार

कस्यापि कस्यचित्य तीव्रक्षुन्मा म्रियेत, तथैवानर्थाय दोषान् परिहरेत, "अनर्थाय' इत्येतस्य पदस्य दोषान्–अनर्थाय दोषान्" सापेक्ष पुन रोगनिमित्त वा वाधा वा भवेत्–अद्य तुभ्य न ददामीति, शान्तिनिमित्त चोपवास कारयेत्, सर्वत्रापि यतना यथा स्थूलप्राणातिपातस्यातिचारो न भवति तथा यतति तत्र, निरपेक्षबन्धादिषु च लोकोपघातादयो दोषा भवितव्या ॥ इति ॥

कहते है। सापेक्ष उसे कहते हैं जो डोरी आदिसे गाठ ऐसी देवे जिसको अग्नि आदिके लगनेपर शीघ्रतासे खोल सके। यदि बाधना हो तो धुल्वा गाठ से नहीं बाधे। यह चतुष्पाद की विधि है। द्विपदों में दासदासी चोर पुत्र आदि को सुधारने के लिये बाधे तब भी निरपेक्ष न बाधे। उसकी रक्षा करे। जिस से अग्नि भयादि से उसका नाश न होजाय।

श्रावक के लिये ऐसे दो पदों तथा चतुष्पदों को रखने में विशेष सुविधा होती है जो बिना बाधे ठहर सके।

(२) 'वध' को ताडनभी कहते हैं। यह दो प्रकार से होता है अर्थ से और अनर्थ से। निर्पेक्षतासे दया रहित जो ताडन किया जाता है उससे अतिचार होता है। और सापेक्षतासे ऐसा विचार करे कि–ये पशु आदि किसीकी घात न कर डाले। यदि किसी का नुकसान करता हुआ दिखाई दे तो मर्मस्थान को बाधा पहुचे ऐसा ताडन न करे।

(३) 'छबिछेद' भी अनर्थ के लिये तथा निरपेक्ष से हाथ पॉव कान नासिकादि का निर्दयता से छेदने को अतिचार कहते है। सापेक्षता से बीमारी की गाठ मस्सा आदि को छेदन करने से अथवा दाग (डाम) देने में अतिचार नहीं माना गया है।

(४) अतिभार न भरना चाहिये। और पशुओंपर बोझ लादनेकी आजिविका भी न करे। यदि दूसरी आजीविका न हो तब द्विपद (मनुष्यादि) स्वय जिस भार को उठा सके या रख सके ऐसे से अधिक न भरे। बैल आदि पर स्वाभाविक भार से अधिक न भरे। हल गाडी में भी नियत समय से ज्यादा न जोते। हाथी घोडे आदि की भी यही विधि समझनी चाहिये।

(५) भात पाणी से किसी प्राणी का विच्छेद न करे। क्यों कि कई एक तीन क्षुधा तृषा आदि से मर जाते है। इससे अनर्थ दोष

को दण्ड दे, चोरोंको बाँधे और मौका आ पड़े तो जुल्मी को सजा भी दे। गुस्से में आकर नहीं, पर न्यायसे अभियुक्तकी पूरी जाँच कर यदि यथार्थ में दोषी हो और उसके जीनेसे प्रजाको महान् कष्ट पहुंचनेकी, शांति भंग की पूरी संभावना हो तो उसे फांसीकी सजा देना यह भी साक्षेप में गिना जायगा।

ऐसे तो राजा फांसीकी सजा दे सकता है पर जिन्हें केवल बंधन की ही सजा दी गई है उसके भरण पोषणमें कभी दुष्टताका परिचय न देना चाहिये। राजा का कर्तव्य है कि उसकी भूख प्यास तथा अन्य शारीरिक बाधाएं न रुके इसकी तरफ ध्यान रखता रहे। इतने दिन तो उसकी जिम्मेवारी उसीके उपर थी पर अब उसके जीवन की जिम्मे-वारी राजा पर है। यदि उसे किसी प्रकारका न्याययुक्त कानूनी कष्ट के सिवाय कष्ट भोगना पडेगा उसका पाप राजाके सिर पर होगा। जो राजा इस बातका ध्यान न रक्खेगा उसका दोष राजा के ऊपर तो होगा ही, पर उसका राज्य भी दोषी हो जायगा।

मित्रों! यह बात तो हुई द्रव्य बंधनकी। ऐसाही भाव बधन के लिये समझ लेना चाहिये। अर्थात् जातिके बधन रीति रिवाज ठहराव कानून ऐसे न हो कि बिचारे गरीब कुचल कुचल कर रिब–रिबकर मर जावें। यदि आप अपनी समाज में अन्याय युक्त कानूनों का प्रचार न करेंगे और जो अभी प्रचलित कितने ही विपरीत कानून हैं उनको ठुकरा देंगे तो आपकी समाजमें रामराज्य–सा आनन्द फैल जायगा, कोई सन्देह नहीं है।

पहले अतिचारका कुछ विचार हुआ अब दूसरे अतिचार वध जाता है। इसके दो भेद होते हैं। एक ध'। रास्ते चलते हुए बिना कसूर किसी मनुष्य

अतिचारोंकी विशेष व्याख्या.

पहला 'वध' नामक अतिचार आया है। वध के दो भेद होते हैं। एक तो दो पद को बांधना और दूसरा चौपदको बांधना। दास दासी नौकर चाकरोंकी गिनती दो पदमें है और हाथी घोडा गाय आदिकी चौपदमें। ये दो कारणोंसे बांधे जाते हैं. जैसे-अट्ठाये अनट्ठाये-अर्थ के लिये और अनर्थके लिये। किसीको बिना मतलब बांधना और उसे कष्ट देना, उसकी कुदरती बाढको रोक देना, यह एक प्रकारकी हिंसा है। श्रावकको चाहिये कि इससे बचे।

अट्ठाये अर्थात् अर्थसे बांधना। इसके दो भेद हैं-निरपेक्ष और सापेक्ष। निरपेक्ष उसे कहते हैं जो लापरवाही से बांधा जावे, ऐसा बांधा जावे कि वह अपने हाथ पैर भी न हिला सके। ऐसा बांधना श्रावकका धर्म नहीं है। दूसरा बांधना है सापेक्ष, मतलब के लिए करुणायुक्त जो बांधा जावे उसे सापेक्ष कहते हैं। शास्त्र कहता है कि पशु आदिको करुणाभावसे इसप्रकार न बांधे कि उन्हें दुःख हो। मौके बे-मौके जैसे लाय (अग्निकांड) आदिमें जल्दी खोला जा सके।

दोपद--दास दासी यदि उद्दण्डता करते हों उनको सुधारने के लिये बांधना यह सापेक्ष बांधना है। चोरको चोरी करने की सजा याने चोरी की आदत मिटाने के लिये बांधना यह भी सापेक्ष है। इसीप्रकार पुत्रको पढनेके लिये बांधना यह भी सापेक्ष है।

मैं पहले कई बार कह चुका हूं कि यह धर्म राजाओं के मुकुट पर रहनेवाला है।

राजा इस धर्मको धारण कर सकता है। जो राजा इस धर्म को धारण, करे और अपने फर्ज अनुसार प्रजा के कल्याण के लिये अन्यायियों

को दण्ड दे, चोरोंको बाधे और मौका आ पडे तो जुल्मी को सजा भी दे। गुस्से में आकर नहीं, पर न्यायसे अभियुक्तकी पूरी जाँच कर यदि यथार्थ में दोषी हो और उसके जीनेसे प्रजाको महान् कष्ट पहुचनेकी, शाति भग की पूरी सभावना हो तो उसे फांसीकी सजा देना यह भी साक्षेप में गिना जायगा।

वैसे तो राजा फांसीकी सजा दे सकता है पर जिन्हें केवल बंधन की ही सजा दी गई है उसके भरण पोषणमें कभी दुष्टताका परिचय न देना चाहिये। राजा का कर्तव्य है कि उसकी भूख प्यास तथा अन्य शारीरिक बाधाए न रुके इसकी तरफ ध्यान रखता रहे। इतने दिन तो उसकी जिम्मेवारी उसीके उपर थी पर अब उसके जीवन की जिम्मेवारी राजा पर है। यदि उसे किसी प्रकारका न्याययुक्त कानूनी कष्ट के सिवाय कष्ट भोगना पडेगा उसका पाप राजाके सिर पर होगा। जो राजा इस बातका ध्यान न रक्खेगा उसका दोष राजा के ऊपर तो होगा ही पर उसका राज्य भी दोषी हो जायगा।

मित्रों! यह बात तो हुई द्रव्य बंधनकी। ऐसाही भाव बधन के लिये समझ लेना चाहिये। अर्थात् जातिके बधन रीति रिवाज ठहराव कानून ऐसे न हो कि बिचारे गरीब कुचल कुचल कर रिब–रिबकर मर जावें। यदि आप अपनी समाज में अन्याय युक्त कानूनों का प्रचार न करेंगे और जो अभी प्रचलित कितने ही विपरीत कानून हैं उनको ठुकरा देंगे तो आपकी समाजमें रामराज्य–सा आनन्द फैल जायगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

पहले अतिचारका कुछ विचार हुआ अब दूसरे अतिचार वध (हनन) पर विचार किया जाता है। इसके दो भेद होते हैं। एक 'अनर्थ,' दूसरा 'अर्थ'। रास्ते चलते हुए बिना कसूर किसी मनुष्य

या पशुको डण्डे आदि से चोट पहुचाना अनर्थ में गिना जाता है। अर्थ 'हनन' के दो भेद है। एक सापेक्ष और दूसरा निरपेक्ष। दया रहित होकर अग उपांग के चोट पहुच जाने का विचार न कर जो चोट पहुंचाई जाती है उसे निरपेक्ष कहते हैं। और जो सुधारके खयाल से अपना व्रत भग न हो जावे—मानों मैं अपने ही शरीर पर मार मार रहा हू ऐसा खयाल कर जो दड देता है, वह सापेक्ष है।

तीसरा अतिचार है 'छविछेदन।' इसके दो भेद—सापेक्ष और निरपेक्ष।

श्रावक लोग चीर फाड के कामोंसे डरते या धूजते नहीं हैं। जो दुखियोंके दु'ख को निवारण करने के लिये उनके व्रण अर्श आदि का छेदन कर तथा मवाद खून आदि साफ कर मरहम पट्टियोंकी सेवा करता है, उसके अन्दर अपूर्व करुणा का उदय होता है।

अब चौथा अतिचार 'अतिभार' आया। पहली बात तो यह है कि श्रावक को गाडी आदि से अपनी आजीविका चलानी ही नहीं चाहिये। यदि चलानी ही पडे तो सापेक्ष और निरपेक्ष का ध्यान जरूर रखना चाहिये। बैल तथा घोडों आदि के ऊपर इतना बोझ न लाद देना चाहिये कि बिचारों के हाथ टाग टूट जाय या शक्ति से ज्यादा काममें लेने से अपनी जीवन लीला जल्दी समाप्त करनी पडे।

कई मनुष्य भी अपने पेट के लिये बोझ उठाने का काम करते हैं। आप लोगोंका कर्तव्य है कि दया कर उनसे शक्ति से ज्यादा काम न लें। उसको उतना ही बोझा उठानेका अधिकार है जितना वह अपने हाथ से सुख पूर्वक उठा सके और रख सके।

कोई प्रश्न कर सकता है कि यदि वह आदमी अपनी मर्जी से शक्तिसे ज्यादा बोझ उठाना चाहे तो?

इसका उत्तर यह है कि—यदि वह अपने मन से भी उठाना चाहे तो भी श्रावकको उसे न उठाने देना चाहिये। क्यों कि इस प्रकार बोझा उठाने से उसकी जिंदगी जल्दी खतम हो जाती है, ऐसा पुस्तकों के अन्दर पढने में आया है। ऐसा करने से एक दोष और भी है और वह यह कि करुणा का भाव नष्ट हो जाता है।

इन मनुष्य बैल, घोडों आदि के ऊपर ज्यादा न लादना चाहिये, यह बात तो आप समझ ही गये। यहां यह भी समझ लेना चाहिये कि अ—समय में लडके लडकियोंका विवाह करना यह भी उन पर अनुचित बोझा डालना है। कु—जोडे के साथ विवाह कर देना यह भी अनुचित बोझा है। प्रजाके हित को सामने न रख कर जो कानून (अन्याय युक्त) उनके द्वारा जबरदस्ती चलाये जाते हैं यह भी एक प्रकार का बोझ है। अतएव इन कामों को श्रावक व्रतधारी मनुष्य (राजा आदि भी) कभी न करे।

जिन पशुओं और मनुष्यों को अपने अधीन कर रक्खे हैं उनको समय पर विश्राम देना, शक्ति से अधिक काम न लेना इस तरफ से कभी बे—भान न होना चाहिये।

पाँचवां अतिचार 'भत्त पाणी विच्छेद' है। इसके भी पूर्ववत् दो भेद है। श्रावक को चाहिये कि अनर्थ से किसी को भूखों न मारे। सापेक्ष भूखों मारने में कोई दोष नहीं गिना गया है। समाज के अन्दर अभी कुछ ऐसी बेहूदी फैली हुई है कि वैद्य वगैरे आज्ञा देते हैं कि इसको रोटी आदि मत देना तो भी घरवाले 'कुछ तो खा ले' कह कहकर जबरदस्ती खिलाते है।

रोग अवस्था में भूखों मारना रोगी को भूखों मारना नहीं है पर रोग को भूखों मारना है। इसी प्रकार रोग अवस्था में रोटी देना रोगीको

रोटी देना नहीं है पर रोग को रोटी देना है। वैद्य आदि निश्चय कर कहे कि इस रोग में रोटी आदि देना हानिकर है ऐसी अवस्था में रोटी न दी जाय तो यह पाप का काम नहीं, पर करुणा का काम है। किसी को सुधारने के लिये, 'रोटी न दी जायगी', ऐसा भय दिखाना सापेक्ष में गिना गया है।

मित्रों ! आप लोगों को समुच्चय रूप में अतिचारों के रूप बतलाये गये हैं। आपको चाहिये कि इन में सापेक्ष और निरपेक्ष का ध्यान रख कर इस व्रत को पालने की अवश्य कोशीश करें।

हिंसा के कार्य और उनसे बचने का उपाय।



मित्रों ! हिंसा बुरी है ऐसा सारा जगत कहता है पर इसके सच्चे स्वरूप को समझे बिना इस से बच नहीं सकते। हिंसा का स्वरूप शास्त्र में निराले निराले ढंग से बतलाया है, इसका यही मतलब है कि मनुष्य इसके वास्तविक रूप को पहचान ले। वस्तुके गुण दोष को अनेक रूप से बतलाने का तात्पर्य केवल यही है कि यदि वह वस्तु अच्छी हो तो उसके प्रति लोग आदर, और बुरी हो तो उसका तिरस्कार करें—धिक्कार करें।

प्यारे भाइयों ! आत्मा हिंसा कब करती है और दया कब, यह मैं आपको बतलाना चाहता हूँ।

आत्मा मे दो गुण हैं—शुभगुण और अशुभगुण। शुभ गुण में प्रवृत्त होने से आत्मा दया करती है और अशुभ में प्रवृत्त होने से हिंसा।

हिंसा और अहिंसा आत्मा के परिणाम हैं। इस पर गणधरोंने शास्त्र के अन्दर बडी ही मार्मिकता के साथ चर्चा चलाई है। उनके परिश्रम का लाभ लेना प्रत्येक मनुष्य के लिये शुभदायी होगा।

शास्त्र में जिस प्रकार एक वस्तु के अनेक भेद बतलाये हैं उसी प्रकार हिंसा के भी कई भेद बतलाये हैं। इसका कारण यही है कि किसी भी प्रकार से लोग हिंसा से बचें। हिंसा के बुरे गुणों को प्रगट करना, हिंसा पर कोई क्रोध नहीं है, यह तो उसके सच्चे स्वरूपको बतलाना है।

वस्तु के यथार्थ गुण दोष बतलाना संसार कल्याण के लिये बहुत जरूरी है।

शास्त्र यदि हिंसा अहिंसा का रूप न समझावे तो मनुष्य उससे दूर कैसे रह सकता है? जो मनुष्य सर्प के जाति स्वभाव को नहीं जानता वह उसके डसने से कैसे बच सकता है। जो जहर के गुण को नहीं जानता, वह अवश्यही धोखा खा जाता है। इसी प्रकार जो हिंसा के रूप को नहीं जानता वह उससे बच नहीं सकता।

हिंसा से बचनेवाले प्राणी की आत्मा में अपूर्व जागृति उत्पन्न होती है। हिंसा से बचना दयावान् का खास लक्षण है।

प्यारे मित्रों! सब प्राणियों ने अपनी अपनी रक्षा के लिये—खाने के लिये दाढ व दाँत, देखने के लिये नेत्र, सुनने के लिये कान, सूँघने के लिये नाक, चखने के लिये जीभ आदि अंग उपांग अपने अपने पूर्व कर्म के अनुसार प्राप्त किये हैं। इनको छीन लेनेका मनुष्य को कोई अधिकार नही है। जो मनुष्य मक्खी के पंख को नहीं बना सकता उसे, उसको नष्ट करने का अधिकार नहीं है। परन्तु स्वार्थ ऐसी चीज है कि इसकी ओट में कुछ भी नहीं दिखता। जो अंग उपांग दूसरे के लिये उपयोगी हैं, मनुष्य कहा करते हैं कि यह तो हमारे लिये पैदा किया गया है। ऐसे कहनेवाले को सिंह मनुष्य की भाषा में कहे कि तू मेरे खाने के लिये पैदा किया गया है, तो वह मनुष्य उसे क्या जवाब देगा?

मित्रों! ये सब स्वार्थ है, इसी कारण अज्ञानी मनुष्य अपने अज्ञान से यद्वातद्वा ऐसी हिंसा करने का पाप किया करता है। ज्ञानी पुरुष ऐसा कभी नहीं करता। वह सब प्राणियों को सुख का अभिलाषी समझता है। वह किसी के द्वारा किसी प्राणी की हिंसा करने का अधिकार नहीं समझता।

जो दूसरे के हाड लेता है, क्या उसके हाड (हड्डियें) बचे रहेंगे ? कभी नष्ट न होंगे ?

'होंगे।'

जो दूसरे के मास को हरण करेगा, क्या उसके मासका कभी नाश न होगा !

'होगा।'

जो दूसरे का चमडा उतारता है, क्या उसका चमडा नष्ट न होगा ?

'होगा, अवश्य होगा।'

जो प्राणी जिस जीव की हिंसा करता है उसे उसका वदला अवश्य चुकाना पडेगा। इसीलिये ज्ञानी कभी हिंसा नहीं करते। जो अज्ञान से हिंसा करते है वे उसे योग्य उपदेश देकर छुडाने का प्रयत्न करते हैं।

उदयपुर में एक वकील ने पूछा कि 'महाराज ! आत्मा जब अजर अमर है तब जीव रक्षा की क्या जरूरत ?'

मैने कहा—आत्मा अजर अमर है तभी तो दया की जरूरत है। यदि आत्मा नष्ट हो जाती हो तो फिर न मारने वाले को पाप और न मरने वाले को।

प्यारे भाइयों ! पहले आप लोग आत्मा के स्वरुप को ठीक तौर से समझो। समझने के बाद ही आप कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

कर्तव्याकर्तव्य के ज्ञान के विना भक्ष्याभक्ष्य का भी कैसे ख्याल रह सकता है ?

कई भाई कर्तव्याकर्तव्य के ज्ञान न रखने से ही अभक्ष्य-अभक्षण, जैसे मांस और अभक्ष्य-पेय, जैसे शराब आदि का उपयोग करते हैं। बीड़ी सिगरेट चुरुट भी इसीके अज्ञान से लोग काम मे लाते हैं।

याद रखिये, मास और शराब आदि खाने पीने में पाप तो है ही पर साथ में यह अस्वाभाविक भी है।

मैंने एक पादरी की लिखी पुस्तक में पढा था कि हिन्दू लोगों से हम (ईसाई) विशेष दया रखने वाले हैं। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार गेहूँ आदि पदार्थों में जीव है। हिन्दू लोग गेहुँओं को पिसाकर खाते हैं, इसमें कितनी हिंसा होती है। एक बात और भी है जब गेहूँ आदि की खेती की जाती है, तब भी पानी के मिट्टी के, और न जाने कौन कौन से हजारों जीवों की हत्या होती है, तब कहीं जाकर वे [हिन्दू] अपना पेट भरने में समर्थ होते हैं। इस पर भी वे अपने को अ-हिंसक मानते हैं।

हम (ईसाई) लोग सिर्फ एक बकरे को मारते हैं इससे एक से अधिक का पेट भर जाता है। हिंसा बहुत कम होती है।

मित्रों! पादरी ने अपनी पुस्तक में, जो इस प्रकार लिखा है, क्या आप इसका उत्तर दे सकते हैं?

आप लोगों की चुप्पी से मालूम होता है कि आप इसका उत्तर नहीं दे सकते। खैर, सुनिये—

जो पादरी अपने को कम, और हिन्दूओंको हिंसक विशेष रूप से मानता है वह अनजान भोले लोगों की आखों में धूल झोंकने का काम करता है। वह इस दलील से हिन्दूओं के प्रति घृणा प्रगट करवाना चाहता है। और चाहता है कि 'इस दलील के सुनने से लोगों पर हमारी छाप पड जायगी और ईशु के चरणों में बहुत से लोग

सर झुका देंगे।' यह इस पादरी भाई का खयाल बिलकुल गलत है। उसे समझ लेना होगा कि मैं जो दलील पेश करता हूँ, सच्चे अहिंसा के अर्थ या मर्म जानने वाले के सामने यह काफूर की तरह उड जायगी।

सोचिये, क्या बकरा आसमान से टपक पडा है?

'नहीं।'

उसका जन्म किसी बकरी के गर्भ से हुआ है। उस बकरी ने कितना चारा खाय और कितना पानी पीया। जन्म लेने के बाद उस बच्चेने कितना चारा खाया और कितना पानी पीया, इसका भी हिसाब लगाना बहुत जरूरी है। अब आप बकरे की हिंसा और धान पैदा करने वाली हिंसा दोनों का मिलान कर देखिये किसमें ज्यादा हिंसा हुई।

एक बडी बात इसमें और भी रही हुई है। क्या धान आदि के ारा पेट भरने वाला उतना क्रूर स्वभाव का हो सकता है जितना मांस खानेवाले का होता है? यदि नहीं तो फिर मास खाने के गुण और धान खानेवाले के अवगुण कैसे गाये जाते हैं, कुछ समझ में नहीं आता।

ऊपर ऊपर के विचार करने से पादरी को तो हमने दोषी ठहरा दिया और यह भी कह दिया कि वह अपनी झूँठी सफाई देकर लोगों को धोका देता है। पर आपने अपनी खुद की भी कभी विचारी है?

खैर, विषयान्तर हो जाने के भय से इस आई हुई बात को यहीं पर रोक कर पूर्व विषय पर ही आजाइये।

मैंने ऊपर कहा था कि मास खान में पाप तो है ही, पर मनुष्य के लिये अस्वाभाविक भी है। यदि स्वाभाविक होता तो बिना शराब व मास के एक प्राणी भी नहीं मिलता। स्वाभाविक उसे कहते हैं जिसके बिना जीवन निर्वाह ही न हो सके। जैसे पानी के बिना प्राणी नहीं जी

सकता। पर हम देखते हैं कि शराब व मास के बिना आज करोड़ों की सख्या में जी रहे है।

शराब के कारण कई राजाओंका खून हुआ है और कई शराबियों ने शराब के नशे में अपनी माँ बहिनों के साथ कु-कृत्य किया है, ऐसा सुनने में आया है। सच बात तो यह है कि शराब पीने पर दिल पर ऐसा नीच असर होता है कि भले बुरे का कुछ भी ध्यान नहीं रहता। यही क्यों, आप चुरुट को ही लीजिये। एक अंग्रेज विद्वान् को चुरुट पीने का बहुत शौक था। एक दिन उसे चुरुट के जोर से नशा खूब चढ आया। उसकी औरत सोई हुई थी, छुरे से उसे मारना चाहा पर थोडी देर में नशे के उतर जाने के बाद इस नीच विचार पर धिक्कार देने लगा। थोडी देर पीछे उसने फिर चुरुट पिया इस बार उसने अपनी स्त्री को छुरे से मारने का कु-कृत्य कर ही तो दिया।

चुरुट पीने से जब इतना पतन हो जाता है तब शराब से कितना होता होगा, इसका विचार आपही कीजिये।

शराब पीने वालों के हाथ से हजारों खून हुए हैं।

जिस अमेरिका को आप अनार्य देश कहते हैं वहाँवालों ने इसका बहिष्कार कर दिया है। पर आपके आर्य देश में इसकी दिन व दिन बढती हो रही है इसका क्या कारण है ?

शराब और मास का ओसवाल जातिने त्याग किया है, पर सुनते हैं कई कौम के दुश्मन ओसवाल नाम धर कर छुपी रीतिसे इसका उपयोग करते हैं। जातिवालों की तरफ से इस कृत्य का तिरस्कार होना चाहिये।

प्यारे मित्रों ! याद रखिये शराब और मास मे कई दैवी-प्र ति

गों को राक्षसी-प्रकृतिवाले बना दिये हैं और उनके सुखमय जीवन को दु ख में परिणित कर दिया है ।

जिस घर में शराब पीने का रिवाज है, जरा उस घर की दशा तो देखिये ! स्त्रियें बच्चे टुकडे टुकडे के लिये हाय हाय करते है पर वह शराब का शौकीन शराब के नशे मे झूमता है । उसके धन का शक्ति का, समयका नाश होता है, पर उसे कुछ भी पता नहीं ।

मास खाना अ-स्वाभाविक है, यह मै पहले कह चुका हूँ । मास खाना अच्छा है या बुरा, इसकी परीक्षा अमेरिका में १०००० विद्यार्थियों पर की गई थी। पॉच हजार विद्यार्थियों को केवल शाकाहार-फल-फूल अन्न आदिपर और पॉच हजार विद्यार्थियो को मासाहार पर रक्खे। ६ महिने बाद जॉच करने पर मालूम हुआ कि जो विद्यार्थी मासाहार पर रक्खे गये थे उनकी बनिस्पत शाकाहारवाले सब बातो में तेज रहे। शाकाहारियों में दया, क्षमा, नरिता गुण प्रगट हुए और मासाहारियों में क्रोध, क्रूरता, भीरुता आदि । मासाहारियों से शाकाहारियों में बल विशेष पाया गया। इनमें मानसिक विकाश भी अच्छा हुआ । इस फल को देख कर वहॉ के लाखो मनुष्यों ने मास खाना सदैव के लिये छोड दिया।

श्री गाधीजी जिस समय विलायतके एक शहर में किसी के घर निमन्त्रित हुए तो वहॉ क्या देखते हे कि बहुत से यूरोपियन शाकाहारी थे, बनिस्पत हिन्दुस्थानियों के ।

मासाहार मनुष्यों के लिये स्वाभाविक है या अ-स्वाभाविक इसकी जॉंच अमेरिका में हुई, उसका नतीजा आपने सुना, अब एक और जॉंच आप कीजिये । यह जॉच पशुओं पर से होनी चाहिये। क्यों कि मनुष्य ने अपनी बुद्धि का विकास किया है इसलिये इसने अ-स्वाभाविक को भी स्वाभाविक मान लिया है । वकील लोग बेईमानी को जितना सच्चा

रूप दे सकते है उतना भोला भाला मनुष्य नहीं दे सकता। पशु पक्षी पढे हुए नहीं है इसलिये प्रकृति के कानूनों को तोडने की हिम्मत इनमें नहीं है। प्रकृतिके कानूनों की परीक्षा इन पर बडी अच्छी रीति से हो सकती है।

पशुओं में दो पार्टियें है। एक मासाहारी पार्टी और दूसरी शाकाहारी (घास पार्टी)। मासाहारी पशुओं के नाखून पैने होते है जैसे कुत्ता, बिल्ली, सिंह आदि के। और घासपार्टीवाले पशुओं के पैने नहीं होते, जैसे हाथी, गाय, भैंस, ऊँठ आदि के। घासपार्टी वाले पशु, मनुष्यो के मित्र रूप है। वे घास खाकर दूध देते हैं पर कुत्ता मास भक्षी होने से रोटी भी खाता है और काटने से भी नहीं चूकता।

घासपार्टीवाले शान्त होते हैं और मासपार्टीवाले क्रूर।

खाने पीने का असर शरीर पर और मन पर जरूर पडता है। इस बात को मैं गीता से भी पुष्ट कर सकता हूँ।

अच्छा, अब मैं मासाहारियों की दूसरी पहचान बतलाता हूँ। मासाहारी पशुओं के जबडे लबे होते हैं और घासपार्टीवालों के गोल। गाय और कुत्ते के जबडे देखने से यह भेद साफ माल्म होगा।

मासाहारियों की तीसरी परीक्षा यह है कि वे पानी जीभ से चपल चपल कर पीते हैं और शाकाहारी होट टेक कर। गाय, भेंस, बदर तथा सिंह, कुत्ता, बिल्ली आदि के देखने से यह भेद माल्म हो जायगा।

ऊपर की परीक्षा के साथ मनुष्य का मिलान करने से अ-विरोध रीतिसे सिद्ध हो जाता है कि मनुष्य प्राणी मासाहारी बनने योग्य नहीं है।

कई विद्वान् डाक्टरोंने यह सिद्ध कर बतलाया है कि घास खाने

वाले, मासखानेवाले और अन्नखानेवाले प्राणियों की आतें एक-सी नहीं होती।

वदर के शरीर में मास को पचानेवाली आतें नहीं हैं इसलिये वह कभी मास नहीं खाता, फल चट उठाकर खा जाता है। जरा विचार कीजिये जो मनुष्य की शकल का प्राणी (वदर) है, वह तो मास नहीं खाता, पर मनुष्य कहलाने वाला मास खाता है !!

आप जरा पक्षियोंकी तरफ देखिये। आपने कबूतर को कभी कीडा खाते देखा है ?

'नहीं।'

'और कौए को ?'

'हां।'

'क्या आप जानते है कि कबूतर को और कौए को यह पाठ किसने पढाया ?

'प्रकृति ने।'

आपने कभी तोतेको मास खाते देखा है ?

'नहीं।'

वह आपकी भाषा सिखाने से सीख सकता है। जो मनुष्यकी भाषा सीखे वह तो मांस नहीं खाता पर जिसकी अपनी भाषा है वह मनुष्य मांस खाय यह कितनी लज्जाकी बात है।

अरे मनुष्य! तू तकदीर लेकर आया है जरा तकदीर पर भरोसा रख और प्रकृतिके कानून को मत तोड। क्या मासन खानेवाले भूखों मरते है ?

हम देखते हैं कि जितने मांसाहारी भूखों मरते हैं उतने शाकाहारी भूखों नहीं मरते।

व्यवहार दृष्टि से शाकाहारी हर प्रकारसे सुखी और मांसाहारी दुखी दिखाई देते हैं।

प्यारे मित्रों ! मुझे विश्वास है कि आप लोग मांस का सेवन नहीं करते। ऊपर जो विवेचन किया गया है वह इसलिये कि आप मांसके गुण दोष को अच्छी तरह समझ जॉय और उसके सेवन करनेवाले भाईयों को सच्चा मार्ग दिखा सके।

भाइयों ! यद्यपि आप मांससेवी नहीं हैं पर अहिंसावादी और 'अहिंसा परमोधर्म' के अन्दर विश्वास रखनेके कारण कहा जाता है कि हिंसा के द्वारा होनेवाला आप कोई भी काम न करने में अपना कर्तव्य समझते हैं। मैं चाहता हूं कि वैसेही आप, जिन चीजोंके लिये हिंसा होती है, उसको भी पापपूर्ण समझ कर त्याग कर देंगे।

कई चीजें आज बाजारों में ऐसी बिकती दिखाई देती है जो ऊपर से चमकती हुई सुन्दर और साफ दिखाई देती है पर उनकी बनावट में महा हिंसा तथा घृणित वस्तुओं का उपयोग किया जाता है। आपने विलायती सक्कर देखी होगी। सुना जाता है कि कई भाई आजकल मिठाई बनाने में इसका खूब उपयोग करते हैं। उनका कहना है कि इसमें मैल कम होता है और देशी सक्कर के बनिस्पत कुछ सस्ती भी मिलती है। हाय हाय ! जो भाई एक चिंटी के मारने में पाप समझते है वे ही अज्ञान से कुछ लाभके लिये धर्म तथा देश को पतन के गहरे गढ्ढर में डाल देते है। माना कि यह दिखने में साफ और कीमत में सस्ती है पर क्या आपने कभी इसपर विचार किया है कि यह कैसे घृणित प्रकार से बनाई जाती है* तथा इसके खाने से शरीर को क्या हानि लाभ पहुँचता है ?

---

*(१) 'एन साइक्लो पीडिया ब्रीटानिका' नाम का एक बहुत वर्षों की शोध के बाद तैयार हुआ ग्रन्थ है। जिसके आधार पर सरकार फैसला

भारत में जो सक्कर बनाई जाती है उसमें भी पाप होता है पर विदेशी जितना घोर पाप नहीं। भारत में बनाई जाने वाली सक्कर में एकेन्द्रिय आदि प्राणियों का हिंसा होता है पर पञ्चेन्द्रियों की—गाय आदि—जिन्हें आप माता के नाम से पुकारते है—की नहीं।

करती है। उसके ६६७ वें पृष्ठ पर लिखा है कि–'सक्कर साफ करते समय हड्डियों के कोलसे का चूरा डालने में
हरेक जानवर का रक्त (खून) तथा हड्डियों के कोलसे का चूरा डालने में
आता है।

(२) 'डिक्सनेरी ऑफ आर्ट्स' छठी आवृत्ति लंदन, पृष्ठ ८२९ में लिखा
है कि–'गाय के बनाने में आते हैं उस समय २४ मन सक्कर में २७ मन हड्डियों
के कोलसे का चूरा डालने में आता है।

(३) स्वामी भास्करानन्द लिखते हैं कि–"जब मैं विलायत गया तब मैंने कितने ही सक्कर बनाने के कारखाने देखे। उनके पहले खंड (मंजिल) में पहुंचते ही, मुझे उलटी होगी, ऐसा मालूम हुआ। मैं नहीं जानता था कि ऐसी अपवित्र चीजों से सक्कर बनती है। पर नजरों देखने पर से खेद आश्चर्य होता है कि जिन चीजों के स्पर्श से भी महान् पाप लगता है, वे ही, हिन्दू-लोगों से किस प्रकार खाई जाती है ?"

(४) 'भारत मित्र' ता १८-१०-१९०१ के अंक में लिखा है कि–"अच्छी सक्कर बनाने के लिये जिस प्रकार इस देशमें दूध काम में आता है उसी प्रकार वहाँ (विलायत में) जानवरों के लोही से सक्कर (खांड) का मैल काटा जाता है। कारण कसाईखानों में, दूध के बनिस्पत लोही सस्ता मिलता है।"

(५) मि. हेरिस कहते हैं कि–'खांड सूअर के लोही से साफ करने में आती है।'

(६) ए. जे. टेलर सी. ई. अपने 'शूगर मशीनरी' नाम के ग्रंथ
लिखते हैं कि–'इंगलण्ड वगैरे देशोंमें खांड साफ करते समय पानी और ग
का खून काम में लाया जाता है।'

(७) बम्बई 'ज्ञान-सागर समाचार' ता १५ १२ १९०५ के अव
है कि–परदेशी सक्कर नाना प्रकार के रोगसे पीडित सर्व प्रकार के

प्यारे मित्रों ! आप इससे यह मत समझना कि मैं सक्कर खाने का पक्षपाती हूँ। मैं तो सक्कर का कतई बहिष्कार आप लोगों से करवाना चाहता हूँ। कारण यह स्वास्थ्य को नाश करने वाली और शरीर के लिये अ-प्राकृतिक चीज है।

की हड्डियें, बैल और सूअर तथा मनुष्य के मूत्र से साफ की जाती है। जिनकी हवा से भी डरे, ऐसे कोढ वगैरे रोगवाले लोगों का भी मूत्र !

(८) 'स्वदेशोन्नति दर्पण'—परदेशी सक्कर अपवित्र है इतना ही नहीं पर उसके अन्दर छोटे २ प्राणी कीडा मकोडो आदि की आते मास हाड पिंजर तथा शरीर के अन्दर के रेसे होते है।

मोरस खाड तो बीट बाजर ताडी वगेरो से बनती है पर उसके अन्दर सडा हुआ लोही तथा रोगिष्ट जानवरों की हड्डियों का मिश्रण होता है।

(९) मि फिनल नाम के अंग्रेज गृहस्थ लिखते है कि—'विलायती खाड, जो भारतवर्ष मे फैली है वह दिखने में सफेद और कीमत में सस्ती पड़ती है, पर उसके कारण बहुत से रोग हिन्दुस्थान में फैल चुके है। यह खाड शरीर के रक्त को बिगाडती है तथा शक्ति का नाश करती है। दूध आदि पदार्थों में अपन इसे डालते है, पर अपने को मानना चाहिये कि हम खाड नहीं पर जहर डाल रहे हैं।

इगलेंड और भारतवर्ष के बड़े २ वैद्य और डाक्टरो ने स्पष्ट रूप से अपना मत दिया है कि— यह खाड धर्म शास्त्रकी दृष्टि से तो खाना मना है ही, पर इससे प्लेग, महामारी इत्यादि रोग होते है और बालकों तथा बड़ी उमर वाले मनुष्योंकी मृत्यु सख्या बढ़ी है। इसलिये जो धर्मको न मानता हो उसे आरोग्यकी दृष्टिसे भी इसका खाना छोड़ देना चाहिये।

(१०) 'हिन्दी बगवासी' कलकत्ता ता. ३०-३-१९०३ के अकमें लिखता है कि सिर्फ हिन्दुस्थानमें से २८ लाख मन जानवरोंकी हड्डियें, खाड वगैरे खाने के पदार्थ बनाने के लिये विलायत जाती है। स्वदेशी खाड कदाचित परदेशी से महगी मिले तो भी उसमें पवित्रता और तन्दुरस्ती है तथा मीठास ज्यादा होता है, उसेही खरीदनी चाहिये। जिसकी शक्ति स्वदेशी खाड वापरनेकी नहीं है, उसे गुड काम मे लाना चाहिये इससे गोहत्या अटकेगी और पशुओंकी वृद्धि होकर दूध घी दही वगैरे सस्ते होंगे।

यदि आप इसकी सत्यता की परीक्षा करना चाहते है तो मैं आप से पूँछता हूं कि क्या आप केवल पन्द्रह दिन तक सक्कर के ऊपर दिन निकाल सकते हैं ?

'नहीं।'

और रोटियों पर ?

'सारी जिंदगी।'

तब बतलाईये प्राकृतिक याने शरीर को लाभ पहुँचाने वाली इन दोनों चीजों में से कौन हुई ?

लोग कहते हैं 'रांडों ने दुनियाँ को बिगाड दिया।' मैं कहता हूँ कि जितनी खाँड (सक्कर) ने दुनियाँ को बिगाडा है, उतना नहीं।

अकबर बादशाहा के जैसे मुगल राज्य में भारत में ३ से ४ रु. मन तक घी मिलता था। एक रुपैये के ७ सेर घी की बात तो आज भी आप अपने बूढे बडेरों से पूँछ सकते है। उस समय के लोग आज की तरह चाय की महमानी नहीं करते थे। उस समय चाय का प्रचार हिंदुस्थान में आज की तरह नहीं था। यहाँ चाय का विशेष प्रचार लार्ड कर्जन के जमाने से हुआ। चाय शरीर के लिये नुकसानकारक और बडी ही अपवित्र वस्तु है। चाय अनेक गरीब लोगों की अश्रुधारा से सींची

देशी और विलायती सक्कर की परीक्षा—

(१) देशी और विलायती दोनों सक्कर को जुदे २ वर्तन में रखो। फिर दोनों में थोडा २ सल्फरीक एसिड (गधक का तेजाब) डालो। देशी सक्कर में से तुरत मीठी मट्टी जैसी सुवास और मोरसम से दुर्गंध आवेगी।

(२) काच के गिलास म गरम पानी भरकर उसमें थोडी मोरस सक्कर डालिये गलते समय सूक्ष्मदर्शकयंत्र से देखेंगे तो लोहीरे रजकण दिखलाई देंगे।

जाती है, यह आपको अभी मालूम नहीं पड सकती, पर जब इस पर विशेष विचार करने का मौका होगा तब आपको मालूम पडेगी कि किस प्रकार बहनो और बच्चों की हाय हाय और त्राय त्राय से यह चाय बढ़ाई जाती है ! किस प्रकार गरीबों का पसीना और खून एक होता है !

मित्रों ! ये भाई बहन और बच्चे और कोई नहीं, आपके भारतीय ही है। इन बेचारों को चाय के खेतों में निर्दय अंग्रेज व्यापारियों के द्वारा सदैव मार सहनी पडती है। क्या ऐसी पापमय चाय का पान करना आप ठीक समझेंगे ?*

प्यारे मित्रों ! चाय की ही वजह से आज हिन्दुस्थान में खॉड की ज्यादा मॉग बढ गई है। लोग यदि नुकसानकारक इस चाय को छोड दें तो विश्वास है कि आपको विदेशी अपवित्र खॉड मगवानी ही न पडे।

पहले के लोग खॉड के ज्यादा शौकीन नहीं थे। खॉड की मिठाइये भी इतनी नहीं बनती थीं। लोग ज्यादातर गुड की लापसी से ही अपना काम निकलते थ।

भारत के लोगों में ज्यों ज्यों ऐश आरामी बढती गई त्यों त्यों सुखमाल होकर हरेक विलायती चीजों का ही पसन्द करने लगे।

पहले के लोगों का सिद्धान्त था— ' मोटा खाना मोटा पहिनना।' पर अब ' पतला खाना और पतला पहिनना ' हो गया है ! कहॉ है अब वह बच्चो की सुन्दर हास्यमयी माधुरी और कहॉ है वह जवानों का जोश ?

प्यारे भाइयों ! आपकी यह ऐश आरामी बडी खतरनाक है। यह न केवल इहलोक की, पर परलोक की भी दु ख देनेवाली है।

* चाय पर विशेष विचार किसी अगाडी की पुस्तक में प्रकाशित किया जायगा। —सम्पादक।

इहलोक की तो यों है कि इसके प्रताप से आप दिन दिन शक्ति हीन हो रहे हैं, और शौकिनी चीजें करीब करीब तमाम ही विदेश से आने से दरीद्री भी। और परलोक की यो कि शोक करने की जितनी भी चीजें आज दिखाई देती हैं वे प्राय. महापाप से बनती हैं।

शौक की चीजों में सब से पहला नंबर कपडे का है। आज कल कपडा प्राय. विलायत से आता है। यह दिखने में चटकीला मटकीला और सुन्दर होता है पर कई विद्वान् अंग्रेजों ने अपनी पुस्तकों में लिखा है कि इनके बनाने में चर्बी आदि काम मे लाई जाती है।

सुना गया है कि चर्बी योग्य प्रमाण में सीधी न मिल सकने के कारण कसाईखानों में सैकडों मूक गरीब प्राणियों का बे-रहमी के साथ नित्य कत्ल होता है।

मित्रों! यह कत्लखाना आप लोगों और केवल आप लोगों के लिये चल रहा है। यदि आप अपनी मौज शोक को कम कर दें तो यह होनेवाला भयकर हत्याकाड शीघ्र बद हो सकता है।

मेरा यह कटाक्ष न केवल विदेशी वस्त्रो की तरफ है पर उन वस्त्रों की तरफ भी समझिये जो भारत की मिलो में तैयार होते हुए भी चर्बी आदिसे बचे हुए नहीं हैं।

मित्रों! जरा विचार तो कीजिये कि आप किसकी सन्तान हैं। आप उन वीर क्षत्रियों की सन्तान है जिन्होंने दूसरों की रक्षा के लिये अपने शरीर का मास काट कर दे दिया पर उस शरणागत का एक बाल भी बाँका न होने दिया। आप लोग इस वीर का नाम जानते हैं? इस वीर का नाम था—राजा मेघरथ।

एक दिन की बात है, राजा मेघरथ अपने धर्मस्थान में बैठा हुआ था। एक भयभ्रान्त कबूतर उडता हुआ उनकी गोद में आ गिरा। बोला—

शिकारी—" कैसे ? "

राजा—" मुझे यह कबूतर पसंद आगया, मैं इसके बदले मे, तू मागे सो देनेको तैयार हूँ । "

शिकारी—" ऐसा ? अच्छा, मैं मॉगूगा वह देगा ? "

राजा—" बराबर । "

शिकारी—" देखना, अपनी जबानसे फिर मत जाना। मैं ऐसी वैसी चीज मॉगनेवाला नहीं हूँ, या मुझे अपनी शिकार दे दे । "

राजा—" कबूतर को छोडकर चाहे सो माग ले सब कुछ देनेको तैयार हूँ ।"

शिकारी—"अच्छा तो मुझे इस कबूतरके बराबर अपने शरीर का मांस दे दे । "

मित्रों ! राजा मेघरथ अपने शरीरको नाशवान् समझ कर इस बातको कबूल करता है और अपने शरीर का मास काट कर दे देता है।

जिनके पूर्वज एक प्राणीकी रक्षाके लिये अपने शरीर का मास काट कर देना कबूल कर लेता है पर प्राणी की हिंसा नहीं होने देता ! अब उन्हींकी सतान अपने तुच्छ मौज–शौक के लिये हजारों प्राणियों के नाश को देखकर भी हृदय में दया न लाये उन्हें क्या कहना चाहिये ?

आपके पूर्वज पहले बिना चर्बीका, देशका बना कपडा पहनते , जिसे आज के लोग ' खादी ' के नामसे पुकारते है ।

मित्रों ! खादी के उपयोग से न केवल पैसेकी ही बचत होती है धर्म भी होता है ।

विलायती कपड़ों का जब इस देश में प्रचार नहीं था तब लाखों मनुष्य इसी धंधे के द्वारा अपने पेट भर लेते थे। इतिहास कहता है कि बाद में स्वार्थी अंग्रेजोंने उन विचारे गरीबों के अगूठे कटवा लिये और अपने देश (विलायत) के वस्त्रों का यहा प्रचार बढा दिया। मिल भी यहा भेज दिये गये। इन मिलों से भी देशके मनुष्योंकी क्षति कम न हुई। सैकडों मनुष्योंकी रोटी पर कुछ मनुष्य ही हाथ साफ करने लगे और बाकी के भूखों मरने लगे। देशका सौभाग्य समझिये कि कई धर्म गुरुओं और देशके नेताओंने इस भयकर अत्याचार को पहचाना और चर्खे का पुनर्निर्माण किया। चर्खे के द्वारा आज फिरसे सैकडों भाई-बहनोंको रोटी हाथ आने लग गई। जो भाई खादी का उपयोग करता है, वह गुप्त रीतिसे इन गरीब भाई बहनों को मदद पहुँचा कर पुण्योपार्जन करता है, ऐसा माना जाता है

मित्रो! याद रखिये, खादी सादी और देश की आजादी है।

मित्रों, क्या आप जानते है कि देश पराधीन कब होते है?

"नहीं।"

मैं बतलाता हूँ। जो देश वस्त्र और रोटी के लिये दूसरे का मुँह नहीं ताकता, वह कभी पराधीन नहीं हो सकता पर जो इन दो बातों के लिये दूसरों की तरफ देखता है वह गुलाम बने बिना नहीं रह।

देश वस्त्र से तो गुलाम बन ही चुका, अब रोटी के लिये भी के पास हाथ पसार ने लग गया है।

मित्रो! रोटी से मतलब आप अपने घर जैसी रोटी की ही बात मत समझ लेना। रोटी से मेरा मतलब खान पान की चीजों से है।

बिस्कुट विलायत आते हे, आपके कई देश भाई उनको मजे से खाते है, यह रोटी की पराधीनता नहीं तो और क्या है ?

सुनते हैं, देश में ' वेजिटेबिल ' नाम का नकली घी (!) तो फैला ही था, अब एक प्रकार की लकडी का आटा भी आने लग गया है।

प्यारे भाइयों ! ये बिस्कुट, यह घी, और यह आटा आपके शरीर का कितना नाश करने वाला है ? बिस्कुट आदि खाद्य पदार्थ किस प्रकार सडा कर बनाये जाते है और आप लोग उसके डिब्बों पर के चटकीले सुदर मनमोहक लेबिल देख कर किस प्रकार खरीद कर पेट में रख देते है !

पहले के लोग देशी सादी जूतियें पहनते थे, पर अब आप में से अधिकाश लोग विलायती बूटों का उपयोग करना ज्यादा पसन्द करते हैं। देशी जूती मरे हुए जानवरो के चमडे से बनती है पर विलायती बूटों के लिये सैकडों पशुओं का कत्ल किया जाता है । चमडा जितना मोटा और मुलायम हो उतना ही वह अच्छा गिना जाता है। इसी कार्य को सिद्ध करने के लिये हत्यारे लोग पशुओं को पहले खरीद लेते हैं, बाद में कई दिनोंतक भूखों रख कर उनकी चर्बी गला देते है, फिर लट्ठों की मार से वे इस बुरी तरह से मारते हैं कि उनका सारा शरीर रोटी की तरह फूल जाता है। अन्त में ये हत्यारे कत्ल करने की मशीनों के अगाडी हरा हरा कोमल घास डालते हैं। ये बिचारे अनेक दिनों के भूखे प्यासे अबोध पशु अपने पेट की तीव्र ज्वाला मिटाने के लिये ज्यों ही खाने के लिये उस पर मुंह डालते हैं त्यों ही मशीन की मोटी और चमचमाती हुई तेज छुरी कर-र-र करती हुई उनकी गर्दनों पर बेरहमी से गिर कर उनके सिर को धड से अलग कर देती है ! छटपटाते हुए उन पशुओं के शरीर, निकलती हुई उनमें से खुन की अनेक

तेज धाराऐं और नाचती हुई उनकी पुतलियें देख कर उस समय किस का हृदय करुणा से न उभरेगा ? कौन उस बिभत्स दृश्य को देख रोमाञ्चित न होगा ? और कौन कठोर हृदय उस अवसर पर न रो पड़ेगा ?

मित्रों ! क्या मौज शौक के तुच्छ सुख के लिये ऐसे भयानक हत्याकाड का भागी बनना योग्य है ? यदि नहीं, तो आप सिर्फ बूट ही नहीं, पर ऐसे ऐसे भयानक हत्याकाण्ड जिस वस्तु के बनाने के लिये रचे जाते हो, उन सब का त्याग कर दीजिये।

मित्रों ! आप मेरे पास दया देवी के दर्शन करने के लिये ही तो आये हैं न ?

श्रावक—'जी हाँ।'

क्या आप जानते हैं कि दया देवी का मन्दिर कहाँ है ?

श्रावक—' हृदय में।'

भाई साहबों ! दया माता यदि हृदय में होती तो दया के उपदेश देने की जरूरत ही नहीं पडती। हृदय में दया हो, क्या ऐसी हालत में 'दया दया' पुकारने की जरूरत पड सकती है ?

' नहीं।'

जिसके शरीर मे चैतन्य है उसे फिर कोई बुलायगा ?

' नहीं।'

क्या चैतन्य छिपा रह सकता है ?

' नहीं।'

प्रिय मित्रों ! जिस प्रकार आप लोग धर्म की स्थूल क्रिया करने

शास्त्रकी बात इस समय कुछ न कहकर पाश्चात्यों का इस विषय पर क्या मत है, साइन्टीफिकिस्टोंने इस पर क्या राय जाहिर की है, यह सुनिये—

वे कहते हैं कि प्रकृति की वस्तुओं में गति की प्रतिगति और आघात का प्रत्याघात होता रहता है। उदाहरण रूप एक पर्वत के पास जाकर आवाज दी गई कि 'तुम्हारा बाप चोर।' तो उसकी प्रतिध्वनि निकलेगी— 'तुम्हारा बाप चोर।' जैसी ध्वनि की जायगी वैसी ही प्रतिध्वनि निकलेगी। अगर कोई अपने बापको चोर कहलाना चाहे तो उसे कहे कि 'तुम्हारा बाप चोर।' यदि न चाहे तो न कहे। जिस प्रकार प्रतिध्वनि में 'तुम्हारा बाप चोर' कहा, इससे तुम्हें दुःख होता है, ऐसा समझ कर किसी को कटु शब्द कभी न कहने चाहिये।

मगल से मगल और अमगल से अमगल होता है। गति की प्रतिगति ओर अघात का प्रत्याघात होता रहता है। जो पार्ट आज दूसरों से करवाते हो, वही पार्ट कभी तुम्हें करना पडेगा। साराश यह कि यदि तुम किसी को कष्ट दोगे तो तुम्हे कष्ट मिलेगा। तुम किसी के प्राण लोगे तो कभी तुम्हें प्राण देनें पड़ेंगे। शस्त्र से गर्दन उडाओगे तो वापस गर्दन उडेगी। मास खाओगे तो अपने शरीर का मास खिलाना पडेगा।

हॉ, एक बात जरूर है, जीवन निर्वाह के लिये प्रकृति की शोभा न बिगडे, इसको ध्यान में रखकर सरलता से, बिना किसी को दुःख दिये अपने निर्वाह का आयोजन किया जाता है, उसे अधर्म नहीं कह सकते। धर्म किसी का नाश नहीं चाहता। जो मनुष्य नीति से पैसा पैदा करता है, उसे कोई चोर बदमाश कह कर दड देता है?

'नहीं।'

प्राणी आज स्वतंत्र नहीं है, इन परतन्त्रता की जंजीरों से जकड़े हुओं को छुड़ानेवाला कौन है ?

ये विचारे परतंत्र हैं पर मारनेवाला भी कौनसा स्वतंत्र है ? वह भी परतंत्र है। यदि परतन्त्र न होता तो उसे यह पापमय काम ही क्यों करना पड़ता ?

किसका परतंत्र है ? कौन इसको गुलाम बनाये रखता है ? उत्तर मिलता है—तृष्णा, लोभ, मोह और अज्ञानता आदि का यह दास है। वह मोह से रागान्ध मनुष्य उसके प्राण लेकर अपना बनाना चाहता है। है। वह उसका मास खाकर अपना मास बढ़ाना चाहता है, उसको मार कर अपना पोषण करना चाहता है। उसके प्राणों की इसे तनिक भी परवाह नहीं, उसके दुःख से कुछ भी करुणा नहीं आती। पर इसे विचारना चाहिये कि यदि ऐसा ही समय मेरे लिये आयगा तो मेरा क्या हाल होगा ?

मनुष्य उस प्राणी को किस कसूर से मारता है ? किस गुन्हे से वह मारा जाता है ? क्या उसने गाली दी ? क्या उसने कुछ हरण किया ?

'नहीं।'

तब क्यों मारा जाता है ?

ये बिचारे तमाम भद्र प्राणी है। इनमें से बहुत से घास खाकर तुम्हारा रक्षण कर रहे हैं। ये प्रकृति को शोभानेवाले हैं। इन शोभाने वालोंको मारकर लोग अपना काम निकालते हैं तथा खाने में मजा मानते हैं। इन मनुष्यों की मजा में उन बिचारोंकी कजा होती है। इस कजामें मजा माननेवालोंका कुछ हिसाब होता है ?

'हाँ।'

क्या ?

शास्त्रकी बात इस समय कुछ न कहकर पाश्चात्यों का इस विषय पर क्या मत है, साइन्टीफिकिस्टोंने इस पर क्या राय जाहिर की है, यह सुनिये—

वे कहते हैं कि प्रकृति की वस्तुओ में गति की प्रतिगति और आघात का प्रत्याघात होता रहता है। उदाहरण रूप एक पर्वत के पास जाकर आवाज दी गई कि 'तुम्हारा बाप चोर।' तो उसकी प्रति ध्वनि निकलेगी— 'तुम्हारा बाप चोर।' जैसी ध्वनि की जायगी वैसी ही प्रतिध्वनि निकलेगी। अगर कोई अपने बापको चोर कहलाना चाहे तो उसे कहे कि 'तुम्हारा बाप चोर।' यदि न चाहे तो न कहे। जिस प्रकार प्रतिध्वनि में 'तुम्हारा बाप चोर' कहा, इससे तुम्हें दुःख होता है, ऐसा समझ कर किसी को कटु शब्द कभी न कहने चाहिये।

मगल से मगल और अमगल से अमगल होता है। गति की प्रतिगति और अघात का प्रत्याघात होता रहता है। जो पार्ट आज दूसरों से करवाते हो, वही पार्ट कभी तुम्हें करना पडेगा। साराश यह कि यदि तुम किसी को कष्ट दोगे तो तुम्हें कष्ट मिलेगा। तुम किसी के प्राण लोगे तो कभी तुम्हें प्राण देने पडेंगे। शस्त्र से गर्दन उडाओगे तो वापस गर्दन उडेगी। मास खाओगे तो अपने शरीर का मास खिलाना पडेगा।

हाँ, एक बात जरूर है, जीवन निर्वाह के लिये प्रकृति की शोभा न बिगडे, इसको ध्यान में रखकर सरलता से, बिना किसी को दुःख दिये अपने निर्वाह का आयोजन किया जाता है, उसे अधर्म नहीं कह सकते। धर्म किसी का नाश नहीं चाहता। जो मनुष्य नीति से पैसा पैदा करता है, उसे कोई चोर बदमाश कह कर दंड देता है ?

'नहीं।'

पर जो नीति अनीति का कुछ भी खयाल न कर केवल पैसों से अपनी जेब भरना चाहता है उसे कोई क्या कहेगा ?

'चोर, बदमाश आदि।'

उसे दड मिलेगा ?

'अवश्य।'

यही बात अपने निर्वाह कार्य के लिये समझनी चाहिये। जो अपने मौज शौक के फतूर में आकर मूक प्राणियों का वध करता है, उसे भी दड मिले बिना न रहेगा।

माता के स्तन से बालक दूध पीता है यह उसका धर्म है, पर जो बालक माता के दूध की जगह स्तन का खून पीना चाहता है, क्या उसे कोई बालक या पुत्र कहेगा ?

'नहीं।'

लोग उस बालक को बालक या पुत्र नहीं पर जहरीला कीडा कहेंगे।

यह प्रकृति गौ, भैंस, बकरी आदि से दूध दिलाती है। जगत का इससे बडा उपकार होता है पर लोगों की अजब ताकीद इन उपकारी पशुओं का जल्दी खात्मा कर, एक दो दिन पेट भर कर ज्यादा दिन तक पेट भरने वाले घी दूध के स्रोत को बद कर देती है। इसका मतलब यह हुआ कि फलों को धीरे धीरे आते देख कर वृक्ष का मूलोच्छेदन कर दिया गया।

इन बिचारे मूक प्राणियों की वकालत कौन करे ? गजब की बात है कि साक्षात् इनकी करुणाभरी चीख को सुनकर भी हत्यारों का दिल पत्थर-सा क्यों रहता है ? परतत्र हैं इसलिये। इनको काम क्रोध मोह

आदि ने अपने वश में इस प्रकार कर लिये है कि इनको कुछ सूझता ही नहीं।

आप लोगों में से बहुत से भाई निर्मासाहारी है। ये अपने मन में सोचते है कि मासाहारी ही पापी होते हैं, हम तो इस पाप से बचे हुए हैं। लोगों को दूसरे की बात की कडी टीका सुन कर मजा आता है पर जब उनके स्वार्थ के काम की कोई टीका करता है तब उनको अच्छी नहीं लगती। अच्छी लगे या न लगे सच्चा आदमी तो गुण दोष बतला ही देता है।

जो केवल मासाहारियों को ही पापी समझता है उसे चाहिये कि पहले अपने थोकडे खोलकर देखें कि उसमें कितने प्रकार के पाप बतलाये है। क्या उन पापों का करने वाला पापी नहीं गिना जावेगा?

'जरूर गिना जावेगा।'

जैन शास्त्र के अन्दर १८ प्रकार के पाप माने गये हैं। जैसे–झूठ, चोरी, जारी, क्रोध, मान आदि करना। जो इन पापों का सेवन करे और धर्मात्मा बनने की डींग मारे क्या वह वास्तव में धर्मात्मा है?

'नहीं।'

मित्रों! जैन सिद्धान्त को यदि कोई ठडे मस्तिष्क से विचारेंगे तो पता चलेगा कि यह कैसा पूर्ण है। इसकी आदि से लेकर अन्त तक की तमाम बातें ठीक उतरती हैं। हिसाब करनेवाले बहुत मिलेंगे पर आना पाई तक का हिसाब मिलाने वाले को क्या आप बडा बुद्धिमान् न कहेंगे?

'कहेंगे।'

'पाप से बचना चाहिये' 'धर्म करना चाहिये' इस प्रकार बहुत से भाई कहते है, पर पापों से बचने का और धर्म को करने का बहुत

कम भाई विचार करते है। ये भाई कसाई को बुरा कहते है, पापी समझते हैं, पर स्वय जालसाजी करने से बाज नहीं आते, कपट करने से नहीं चूकते, दूसरे पर दोष मँढने मे नही भूलते, गरीबों के गले दवाने में भय नहीं खाते, झूँठे मुकदमे चलाने में शर्म नहीं लाते, बिलकुल खोटी गवाहियें दिलाने में पैर पीछे नहीं रखते, दूसरे के धन को स्वाहा करने में नहीं हिचकते, पराई स्त्रियों पर खोटी नजर रखने में घृणा नहीं लाते। कहाँ तक कहें, ये पाप करते हैं पर पापी कहलाने में अपनी तौहीन समझते है। कसाई छुरी फेर कर कत्ल करता है, पर ये कलम को चला कर ही कई बार कइयों की एक साथ हत्या कर डालते हैं। बिचारा कसाई हत्या करके हत्यारा कहलाता है पर ये कई हत्यायें करके भी धर्मात्मा वने रहते हैं।

ये लोग यह नहीं समझते कि जैसे हम फँसाते हैं, वैसे हम भी फँसाये जायेंगे, हम मारते हैं पर कभी हम भी मारे जायेंगे। आघात का प्रत्याघात हुए विना न रहेगा।

मित्रो! शास्त्र कहता है कि एक बार तमाम प्राणियों को अपनी आत्मा के तुल्य देख जाओ फिर पता लग जायगा कि दूसरों को दुख कैसा होता है।

"आत्मौपम्येन पुरुषः प्रमाणमधिगच्छति।"

आत्मा के तुल्य तमाम प्राणियों को देखने पर सुख दु ख की साक्षी तुम्हारा हृदय अपने आप देने लग जायगा। आपको शास्त्रों के देखने की जरूरत न रहेगी, सच्चिदानद अपने आप शास्त्र का सार बतला देगा।

मित्रों! मनुष्य को दूसरे के भले बुरे कामों की मालूम पड जाती है पर उसमें स्वय में कैसे कैसे भले बुरे गुण हैं, यह मालूम बहुतों को नहीं पडती। उनको तो तभी मालूम पडती है, जब लोग उनके गुणों

पर कुछ टीका टिप्पणी करने लगते हैं। जो मनुष्य अपने गुणों की टीका देखकर उनको सुधारने की कोशिश करता है वह बुद्धिमान् गिना जाता है।

मित्रों ! अपनी आत्मा हिंसक को देख कर—शिकारी को देख कर उसे क्रूर दुष्ट कहती है पर अपनी आत्मा ने भी अनेक बार जीवों को मारा होगा, उन्हें कष्ट पहुंचाया होगा।

'हे आत्मन् ! अब तू शिकारी नहीं है, हिंसक नहीं है यह तू समझ गयी हो तो अब अज्ञान के जाल में मत पड़ना।' ऐसी भावना कीजिये।

भावना से आपकी आत्मा में अजब शक्ति चमत्कृत होगी और आपको थोड़े ही दिनों में आनन्द का अनुभव होने लगेगा। यह आनन्द थोड़े प्रमाण में न मिलेगा, पर इतने प्रमाण में मिलेगा कि आप उस आनन्द की भेट दूसरों को भी कर सकेंगे।

एक बात जरूर है, और वह यह कि यह भावना स्वार्थ की न हो। इस भावना में 'मुझे धन मिले' 'पुत्र मिले' 'स्वर्ग मिले' 'मैं इतना वैभवशाली बनूं' 'राजा बन जाऊँ' 'बादशाह बन जाऊँ' आदि की कांक्षा न हो। भावना अपने लिये न हो पर संसार की कल्याण कामना की हो। उसमें प्रार्थना की जाय कि—

दयामय, ऐसी मति हो जाय।
त्रिभुवन की कल्याण कामना दिन दिन बढ़ती जाय॥ टेक॥
औरों के सुख को सुख समझूँ, सुख का करूँ उपाय।
अपने सब दुःखों को सह लूँ, पर दुख सहा न जाय॥ १॥
भूला-भटका उलटी-मति का, जो है जन समुदाय।
उसे दिखाऊँ सच्चा सत्पथ, निज सर्वस्व लगाय॥ २॥

जब आप ऐसी भावना करने लग जायेंगे तब आपकी आत्मा में अपूर्व जागृति उत्पन्न होगी। आपका सच्चिदानंद प्रगट हो जायगा और मुस्कराता हुआ घोषणा करेगा कि—

'मित्ती मे सव्व भूयेसु।' *

अभी तो आप परदेशों से धन कमा लाते है और यहाँ (मारवाड में) आकर गप्पे मारा करते हैं पर उक्त घोषणा होने पर क्या आप इस प्रकार निकम्मे बैठे रहेंगे? उस समय आपको एक क्षण का विश्राम लेना भी औचित्य से परे मालूम होगा।

उस समय आप के जीवन की वह धारा जो प्रबलवेग से नीच स्वार्थों के गहन गह्वर में पतित हो रही है, निस्वार्थ की मंदाकिनी का रूप धारण कर धराधाम पर शान्त गंभीर गति से प्रवाहित होने लग जायगी।

आप के जीवन की वह धारा जो अभी ईर्षा, क्लेश, दु:ख, सन्ताप आदि के विषैले पौदोंके बढ़ाने में सहायक बनती है, उस समय प्रेम, हर्ष, आनन्द, शान्त्वना आदि की वल्लरियों को नव–पल्लवित करने में आधारभूत–सी होकर अखिल विश्व के सर्व प्राणियों की गुप्तरूप से सेवा बजायगी।

याद रखिये, आपको शास्त्र में 'धम्म सहाया' अर्थात् धर्म के अन्दर सहायता देने वाले कहे हैं। क्या गप्पे मारनेवाले कभी धर्म के सहायक कहला सकते है?

'नहीं।'

धर्म के सहायक वे ही कहला सकते हैं जो स्वयं धर्म नियमों का

* 'सब प्राणी मेरे मित्र है।'

पालन करते हैं तथा सच्चे हृदय से प्रेममयी भाषा में दूसरों को उसका बोध कराते हैं।

गप्पें मारनेवाले स्वय तो पाप बाँधते ही हैं पर दूसरों से भी बंधवाते हैं। क्यों कि इन थोथी गप्पों में दूसरों की निंदा, दूसरों की चुगली और दूसरों की खोटी--चोखी ही का मुख्य विषय चलता रहता है।

आपस में फूट आज खूब बढ रही है इसका मुख्य कारण' क्या ?
' ये ही गप्पें। '

मित्रों! यदि आपके कुछ काम नहीं है तो व्यर्थ की बातें मत मारो, फजूल गप्पें न उडाओ। इन बडबडाहटों से आपकी आध्यात्मिक शक्ति कम हो जाती है। अत एव अवकाश के समय मौन का अवलम्बन करो। मौन साधारण को शक्तिमान् पुरुष बना देता है।

जब किसी एंजिन की शक्ति को काम में लानी होती है तब मशीन चलानेवाला कारीगर उस मशीन की शक्ति को संचित कर लेता है। बुद्धिमान् भी उस एंजिन चलानेवाले कारीगर की नाईं अपने मस्तिष्क की शक्तियों एकत्रित करके उनको रोकी हुई रखता है ताकि जब और जहाँ चाहिये वहीं उनका उचित और सशक्त प्रयोग करके वह अपने आवश्यक कार्य को सफलता के साथ सम्पादन कर लेता है। बकझक करने वाले में यह शक्ति नहीं होती।

यदि व्यर्थ की बकझक की टेव लोगों में न होती, फजूल की निंदा करने का अभ्यास लोगों में न होता, अकारण गप्पों के लिये लोग अपने अमूल्य समय का नाश न करते तो आपकी समाज में ये दल--बंदियें, ये धडे और ये पार्टियें कभी नहीं दिखलाई देतीं।

मित्रों! मैं पहले कह चुका हूँ कि द्वेष फैलाना हिंसामें गिना गया है, अतएव द्वेष बुद्धि छोड दीजिये। आप ' औरों के सुखको

देख कर कभी न जलूँगा ' इस मत्रका जाप कीजिये, पवित्र बन जायेंगे। मैं आपको वेद सुनाऊँ, पुराण सुनाऊँ या कोई धर्मशास्त्र सुनाऊँ, सबमें यही बात मिलेगी।

कई भाई कह सकते है कि दूसरोंके सुख से हमें क्या फायदा ? आप इस भेद के पर्दे को उठा डालिये फिर देखिये क्या आनंद आता है। आप यदि इस पडदे को उठा देंगे तो ईश्वर के दर्शन हो जायँगे।

मै जानू हरि दूर है, हरि है हिरदा मॉय।
आडी टाटी कपट की, तासे सूझत नॉय॥

(कबीर)

ईश्वर कहता है—हृदय शुद्ध करो, विश्वास रक्खो, मेरे दर्शन पा जाओगे। इसके बिना मेरी भेट के लिये भटकते ही रहो पर कहीं न पाओगे।

हृदय शुद्धि का उपाय वही है जो मैने ऊपर बतलाया था अर्थात् दूसरे के सुख को देख कर सुखी बनो यही हृदय शुद्धि का उपाय है।

मेरा अनुमान है, ऐसी हृदय शुद्धि आप लोगों ने नहीं की। आप कहेंगे कैसे ? सुनिये—

किसी के मकानमें सरकारने मुफ्त में नल लगवा दिया। अब उस मनुष्यको कितना सुख होगा ? वह समझेगा—अहा, मेरे उपर सरकारकी कितनी महरबानी है, मेरे घरमें नल लगाकर मेरी इज्जत की गई है। है कोई मेरे समान दूसरा कोई इज्जत का पात्र ?

इस प्रकार मुफ्त में नल लगाने से इस भाईको कितनी खुशी हुई ?

पर जब सरकार, जिस प्रकार इसके घरमें नल लगाया यदि उसी प्रकार सबके घरमें नल लगा दे तो उस भाईको उतना आनन्द होगा ?

'नहीं।'

वह समझेगा—'वाह, इसमें क्या हुआ ? सब के घरों में लगाया वैसे मेरे घर में भी।'

क्या सब के घर में नल लगाने से वह नल खोटा हो गया ?

'नहीं।'

पर उस भाई के हृदय मे द्वेष उत्पन्न हो गया, इसलिये पहले जो मूँछों पर ताव देता था, वह भूल गया। जब उसके घर में नल लगा था तब वह समझता था कि मैं बडा और सब छोटे। पर अब सब के घरों में नल लग गये तब कहने लगा—

'इसका क्या।'

इसी प्रकार मैं बहनों की बात कहता हूँ—

एक सेठानी सोने के दागीनों में हीरों जडी बगडिये पहन कर दो चार गरीब दासियों के साथ लटपट करती चलती है, तब समझती है—'मैं बडी।' पर जब किसी देवता के प्रताप से उन गरीब दासियों को हीरे के दागीनें मिल जायँ तो उस सेठानी को कितना दुःख होगा ? उस सेठानी से पूँछा जाय-'क्या ये तेरे बाप का लूट कर लाई हैं, जिसमे तुझे इतना दुःख होता है ?

मित्रों ! इस प्रकार की द्वेष बुद्धि छोड दो और उपरोक्त मन्त्र का जाप करो।

रामचन्द्र, हरिश्चन्द्र और पांडवों की लोग स्तुति क्यों करते हैं ? इसके विरुद्ध, रावण, कंस और कौरवों को लोग धिक्कार क्यों देते हैं ?

इसलिये कि वे दूसरोंके दुःखको अपना दुःख और दूसरों के सुख को अपना सुख समझते थे। स्मरण रहे, वे वीर थे और वीरों से ही दया (अहिंसा) होती है। अहिंसा क्षात्रधर्म के विना नहीं पाली जाती। बनियाशाही के हाथों में जब से अहिंसा आई है तब से यह कायरों का चिन्ह बन गई है।

मित्रों! आप (ओसवाल भाई) किसी जमाने में क्षत्रिय थे। आपके अन्दर क्षत्रियत्व का खून दौडना चाहिये। जितने तीर्थंकर हुए हैं वे सब क्षत्रियवंश में उत्पन्न हुए है। यह धर्म (अहिंसा) कायरों का नहीं है।

आप रामचन्द्र की कथा सुनिये—

जिस समय महाराणी केकई, महाराजा दशरथ से राम को बनवास और भरत को राज्य मिलने का वचन देने को कहती है, उसे सुन कर दशरथ मूर्छित होकर गिर पडते हैं, इतने में राम आते हैं। पिता को मूर्छित अवस्था में देख कर केकई से पूँछने हैं—

"माता जी! क्या बात है, जो आप भी उदास हैं और पिता जी भी भूमि पर पडे हुए है?"

केकई विकराल सिंहनी के रूप में बैठी थी, लाल लाल आखें कर बोली—

"क्या बात है? बात क्या हो, यही बात कि तुम महाराज के पुत्र हो, वैसे मेरा पुत्र भरत नहीं है। माता जुदी जुदी हुई तो क्या, पिता तो एक ही है।"

राम— "हाँ माता जी! आप सही फरमाती हैं।

केकई— "तब तुम्हें राज्य मिले, और मेरे बेटे को नहीं?"

राम— "क्यों नहीं माता जी, जरूर मिलना चाहिये।"

केकई— "राम, तुम मीठे बहुत बोलते हो, पर अब मै तुम्हारे फँदे में नहीं आने की।"

राम— "नहीं आना चाहिये माता जी!, यह आपका फरमाना बहुत ठीक है।"

राम—(पिता की तरफ मुखातिब होकर) पिता जी! पूज्य पिता जी!! आप वीर क्षत्रिय हैं, आपको माता के वचन सुन कर घबराना न चाहिये। आप शौक से माता के वचन को पूरा कीजिये। मुझे वन जाने में कोई दुःख नहीं है।

मित्रों! आपमें ऐसा भ्रातृ प्रेम या मातृ प्रेम है? आज भाई भाई छोटी छोटी बात के लिये सिर फोड़ने को तैयार हो जाते हैं। कोर्टों तक मुकदमा बाजी चलती है। मैंने सुना था कि बम्बई के अन्दर दो भाईयों ने अपने धन का बराबर हिस्सा बाँट लिया, पर बड़े भाई का बोया हुआ एक सुपारी का पेड़, छोटे भाई की जमीन के हिस्से में आ गया।

बड़े भाई ने कहा—'मैंने इस पेड़ को बोया है, इसलिये इस पेड़ पर मेरा हक है।'

उत्तर में छोटा भाई बोला—'तुमने बोया तो क्या हुआ, मेरे जमीन के हिस्से पर है, इसलिये एक वर्ष सुपारी तुम लो और एक वर्ष हम।'

बड़े भाई ने यह बात नहीं मानी। आखिर, कोर्ट में मुकदमा चला। लाखों रुपये खर्च हो गये। जज एक दिन इन्क्वायरी करने के लिये उस पेड़ को देखने आये। वहाँ आकर कहा—'काट दो इस नाशकारी पेड़ को, जिसके कारण इतनी तकलीफ उठानी पड़ी।'

आखिर, पेड काटा गया। तब जाकर कहीं उन भाइयों को शान्ति आई।

सुपारी का पेड काटना जितना उन्हें श्रेय लगा, उतना एक के पास या आधा आधा देने में राजी न हुए।

मित्रों! कहां यह भाइयों का नाशकारी मुकद्दमा और कहाँ राम का भाई के लिये राज्य को ठुकरा देना।

कैकई दशरथ से कहती है—" पहले वचन देना सहज था अब पालना मुश्किल है।

राम! कुछ अन्याय से कहती होऊँ तो तुम बोलो।"

राम—नहीं माताजी! आप अन्याय कैसे बोल सकती है? आप तो यह राज्य भरत के लिये मेरे भाई के लिये माँगती हो, न्याय के अनुसार किसी रास्ते चलने वाले के लिये माँगती तो भी अनुचित नहीं था।

राम ने दूसरे के सुख के लिये वनवास ग्रहण किया था। बुरा क्या हुआ? लौटते समय लंका का राज्य अपने साथ और लेते आये।

मित्रों! "दूसरों का सुख चाहो" इस मन्त्र की साधना अब और बतला कर क्या करूँ? आप समझ ही गये होंगे।

, , ,

यहाँ पर हमने मोटी मोटी बातों का थोडे में दिग्दर्शन कराया है। हिंसा अहिंसा का विषय महान् है। सपूर्णता से कहना, हमारी बुद्धि से परे बात है। शास्त्र के अन्दर गणधरों ने इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला है, सद्गुरु के द्वारा उनके परिश्रम का लाभ लेना बडा शुभदायी होगा।

दूसरा अन्तर यह है कि श्रावक को स्थूल हिंसा का सर्वथा त्यागी तो होना पड़ता ही है पर सूक्ष्मों की भी जहांतक बन पड़ता है, रक्षा का ध्यान रखता है। हां, पहला काम उसका स्थूल जीवों की रक्षा करना है। मिथ्यात्वी में यह बात नहीं होती। मौका पड़ने पर वह इस नियम का हद के पार भी काम कर बैठता है।

मित्रों! हमने ऊपर जिस श्रावक के गुण बतलाये हैं, वे विवेकी श्रावक के समझने चाहिये। केवल नामधारी आज कल के श्रावकों में यह गुण बहुत कम देखा जाता है। क्यों कि सच्चे उपदेश के अभाव से उन्हें कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है। कर्तव्या-कर्तव्य का अर्थ अच्छी तरह न समझ सकने के कारण ही बहुत से भाई कर्तव्य के पालने में ढीले दिखाई देते हैं। यह दोष, पालनेवाले भाईयों का कम अंशों में दिखाई देता है। मेरी समझ में यह दोष विशेष कर उपदेशकों का है कि वे क्रमशः कर्तव्य पालने का उपदेश नहीं देते, या शास्त्रों का कुछ का कुछ अर्थ समझा देते हैं।

याद रखिये, जो साधु के कर्तव्य को गृहस्थ से पालने को कहता है वह उसे अपने मार्ग से च्युत करता है। आज गृहस्थ (श्रावक) के सिर पर सूक्ष्म की रक्षा का अर्थात् थावर जीवों की रक्षा करने का भार इतना डाल दिया कि वे इसका विशेष ज्ञान न रखने से, स्थूल हिंसा से भी नहीं बच सके। गृहस्थ के लिये मुख्य कर स्थूल हिंसा से बचने का विशेष आग्रह किया गया है। यदि स्थूल के सिवाय सूक्ष्म (थावर) हिंसा से ही बचने का मुख्य कर्तव्य होता तो शास्त्र में —

"थूला ओ पाणाइवाया ओ वे रमणम्।"

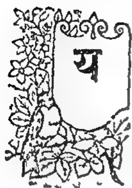
के बदले—

"सुहमा ओ ... वे रमणम्।"

... श्रावक को बतलाते।

सांसारिक कार्य और अहिंसा।





यह बात तो आप जानते ही हैं कि सांसारिक कार्यों में प्रवृत्त होना साधु का काम नहीं है। यह काम गृहस्थ का माना गया है। साधु इस कार्य में इसलिये प्रवृत्त नहीं होते कि यह आरम्भ युक्त होता है। सच्चा साधु आरंभ का कोई भी काम नहीं करता इसीलिये शास्त्र के अन्दर साधु को निरारंभी कहा है। संसारिक कार्यों में धनादि का होना आवश्यक माना गया है। साधु जब सांसारिक कार्यों में हाथ डालना ही नहीं चाहता तब वह पैसा आदि क्यों कर अपने पास रक्खेगा। पैसा आदि पास न रखनेसे ही साधु को निष्परिग्रही भी कहा है।

जिस प्रकार शास्त्र के अन्दर साधु को निरारंभी निष्परिग्रह कहा है, उसी प्रकार श्रावक गृहस्थ को अल्पारंभी अल्पपरिग्रही कहा गया है। यहाँ गृहस्थ के साथ 'श्रावक' शब्द हमने जान बूझ कर रक्खा है। कारण, श्रावक-गृहस्थ ही ऐसा हो सकता है। श्रावक से भिन्न गृहस्थ याने 'मिथ्यात्वी' दूसरे शब्दों में इहलौकिक सुख वैभव को ही अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य मानने वाला गृहस्थ ऐसा नहीं होता। वह महारम्भी महापरिग्रही बनने का ही अभिलाषी हुआ करता है।

इससे आप यह मत समझिये कि श्रावक इहलौकिक सुख से वंचित रहता है या वंचित रहने के लिये उसे उपदेश दिया गया है। नहीं, श्रावक के लिये ऐसा नियम नहीं है। श्रावक इहलौकिक सुखों के लिये प्रयत्न करता और सुख भी भोगता है, पर उसे अपने जीवन का उद्देश्य नहीं समझता। मिथ्यात्वी में और श्रावक में यह एक बड़ा भारी अन्तर है।

या था उस समय असंख्य जल जीवों को देख कर कह देते कि मेरे स्नान के लिये असंख्य जीव मारे जाते हैं, इसलिये यह हिंसा श्रेय नहीं है।' पर ऐसे कहे बिना स्नान करके हाथी पर विराजमान हो ठाट बाट के साथ बरात के जुलूस को साथ ले, उग्रसेन के महल पर गये। यहाँ बाड़े में जीवों को देख कर जगत को जीवों का माहात्म्य बताने के लिये सारथी से पूँछा—

अहसो तत्थ निज्जंतो दिस्सपाणे भयहुए।
वाडे हिं पजरे हिं च सन्निरुद्धेसु दुक्खिये ॥

अर्थात् ये सब सुख के अर्थी जीव बाड़े और पींजरे के अन्दर रोक कर किसलिये दुखी किये गये हैं?

सारथी ने उत्तर दिया—

तुझ विवाह कज्जंमि भोया
णो उस्स तरसण वउयाणि विणासिणीं ॥

... भद्र सुख के अभिलाषी प्राणियों को तुम्हारे विवाह ... नों को भोजन देने के लिये इकट्ठे किये गये हैं।

... वचन को सुन कर महा प्रज्ञावान् जीवों के हितेच्छु नेमीनाथ जी ... करने लगे—

जइ ... कारणा ए ए हम्मति सु
बहू जिया, नम्मे एयंतु निस्से स परलोए भविस्सई।

यदि मेरे विवाह के निमित्त बहुत प्राणी मारे जाते हैं तो यह हिंसा मुझे परलोक में शान्तिदायिनी न होगी।

श्री नेमीनाथ जी के अभिप्राय से सारथी के द्वारा सब जीव छोड़ ... ... कुण्डल आदि सब आभूषण उतार कर उस सारथी

होता है। इस बहन ने यह तेले का दड किसम से निकाला यह हमारी समझ में नहीं आया। अमेरीकावाले यहाँ आकर हमारे भाइयों पर दया करें, पर हम अपने भाई बहनो के प्रति तिरस्कार करें, यह कहाँ का न्याय है?

मनुष्य, पशु पर दया और छोटे छोटे जीवों को बचाने की कोशीश करे पर मनुष्य के प्राण जाते हों उस तरफ कुछ भी ध्यान न दें यह कितनी भारी गैर समझ है!

मित्रों! साधु को तो छ-काया की हिंसा का त्याग है, आपको नहीं है, फिर भी सूक्ष्म जीवों की ओट में आप अपने कर्तव्य के प्रति उदासनिता दिखलाते हो यह उचित नहीं है।

दुनियाँ में ऐसा कोई आरभ का काम नहीं जिसमें कर्मबंध न होता हो। काम को ज्ञान पूर्वक करने से पाप बध कम होता है और अज्ञान से करने से भयकर पापबध हो सकता है।

कई भाई विचारते होंगे कि रोटी करने वाली बहन पाप से नहीं बच सकती। मैं कहता हूँ वह पाप से बहुतांश मे बचती हुई पुण्य प्रकृति का बध भी कर सकती है। आप कहेंगे—'कैसे?' इसका उत्तर है—'जो बहन रसोई करने को अपने पर आया हुआ कर्तव्य समझती है, वह समझती है कि इस रोटी से बहुतों की आत्मा को शान्ति मिलेगी, अपने को मजदूरनी न समझ कर जयणा पूर्वक लकडियों को, कण्डों को और चूल्हे को साफ करती हुई, जीवों को बचाती हुई रसोई करती है, वह पाप प्रकृति में भी पुण्य प्रकृति बाँधती है। पर जो अपने को मजदूरनी समझ कर बे परवाही से रसोई करती है और भोजन करनेवालों को राक्षस समझती है वह बहन पाप प्रकृति में, और पाप प्रकृति बाँध लेती है।

'कभी नहीं।'

बहुत गेहूँ आदि के साथ अन्य सैकड़ों प्राणी भी पीस दिये गये हैं।

भाइयों, जरा विचार कीजिये यह सब पाप किसके जुम्मे आयेगा? आप लोगों ने पुण्य बाँधने की कोशीश की, पर यह तो उल्टा पाप गले बंध गया। मतलब यह हुई कि 'मियाजी नमाज छुडाने गये उल्टे रोजे गले पड़े।'

सुना जाता है कि आज कल लोगों की प्रवृत्ति फ्लोवर मिल (आटा पीसने की चक्की) में आटा पिसाने की ओर बहुत बढ रही है। याद रखिये, इन मिलों में आटा पिसवाने में गेहूँओं का सार (पौष्टिक तत्व) जल जाता है। शरीर के पोषण के लिये बहुत कम अंश बाकी रह जाते हैं। दूसरी बात यह है कि घट्टी में आटा पीसना, और इस मिल में पिसवाना, इसमें जो पाप होता है उसमें भी आकाश पाताल का अन्तर होता है। थोडी देर के लिये मान लीजिये कि आपने अपने घर सेर दो सेर या पाँच सेर जितना भी आटा पीसा, सिर्फ उसी का जितना पाप लगना होगा, लगेगा। पर आप जब गिरनी (मिल) में आटा पिसवाएँगे, वह चाहे एक सेर पिसवाया हो या एक मन, पर दिन भर उसके चलने से--उसके आटा पीसने से जो पाप होगा, उस सब पाप के हिस्से में आपका भी हिस्सा रहेगा। मिल में आटा पिसवाना, उससे होने वाले पाप में सीर (हिस्सा) डालना है।

ऊरण (बम्बई) में मैंने अपनी आँखों से देखा है कि जिस गिरनी में अपने भाई आटा पिसवाते हैं उसी में मांस बेचनेवाले जब मांस बेच डालते हैं तब लौटते समय उसी टोपली में पिसवाने के लिये गेहूँ लेते आते हैं और उसी गिरनी में पिसवाते हैं। ये गेहूँ, मांस की टोपली में

..देव जीवों को मोक्ष क्यों नहीं हो जाती ? ये २२००० वर्ष 'आयुष्य को बिना हाथ पाँव हिलाये डुलाये बैठे रहते है, क्यों ??? मोक्ष होने मे देर हो रही है ?

याद रहे, आलस्य करने से मोक्ष नहीं मिलती।

भाइयो और बहनों ! आप लोग शास्त्रों को देखिये—समझिये, यदि ??? मे इतनी शक्ति न हो कि उनके तत्व को समझ सकें तो सद्-गुरुओं से समझिये। जब आप शास्त्रतत्व को समझ लेंगे और यह 'जान जायेंगे कि किस क्रिया के करने से पुण्य तथा पाप होता है, तब पता लग जायगा कि हमें क्या करना चाहिये और उनसे अनभिज्ञ रहने के कारण अभी क्या कर रहे हैं। इस ज्ञान के अभाव से लोग केवल देखा-देखी का अनुकरण करते हैं और अल्प पाप में भी महा पाप मान कर विरोध करते हे। उदाहरण रूप, कई भाई सर्वव्रती साधु मुनिराजों को आचार विचार पालते हुए देख कर उनकी सूक्ष्म बातों का उसी माफिक अनुकरण करना प्रारम्भ कर देते हैं। साधु किसी को दान नहीं देते इस लिये हम भी साधु के सिवाय किसी को न दे, साधु, गृहस्थ को अनेक प्रकार की क्रियाओं के द्वारा उनका जीवन निर्वाह रूप परोपकार नहीं करते वैसे हम भी न करें, या साधु जिन कामों को न करे, ऐसे परोपकार कार्य में पाप समझें।

यह समझना शास्त्र विधि के अनजानों का हे। क्यों कि सर्वव्रती मुनिराजोंका आचार कल्प और कल्प की मर्यादा अलग है और गृहस्थोंकी अलग। जैसे कि जिनकल्पी महात्मा अकेले रहते, मौन रखते, धर्मोपदेश नहीं देते, दूसरे साधुओं कि वयावच आदि कुछ नहीं करते, यह उनका कल्प है। परन्तु यदि स्थिवरकल्पी साधु जिनकल्पी के देखा-देखी अनुकरण करके वयावच करना, संघ की सेवा करना, परोपकार करना छोड दे तो उसको निर्दयी कहा है।

आने से मास का कुछ अश उन गेहुँओं में लग जाता हे। वे गेहूँ जब गिरन में पिसवाये जाते है तब उन गेहुँओं का अश उसमें रह जाता है। अ आप गेहूँ पिसाने आये, उनके गेहुँओं का अश पहले से ही लगा तो रहता ही है अब वह अश आपक गेहुओं में आ गया, आपने वह आटा खाया, कहिये आप भ्रष्ट हुए या नहीं ?

आलस्य के कारण धर्म की ओट में जो आटा पीसने का त्याग ले लेती है और धार्मिणी बन बैठती है, उसे मै तो तब धर्मिणी समझूँ जब वह आटा खाने का ही त्याग ले ले।

मैं दादर (बबई) भी था तब कुछ काठियावाडी बहनें दर्शन करने आई। उनमें एक बुड्ढी बहन भी थी। बात चलने पर मैने उनसे कहा– ' गिरनी मे तो आटा अब आप नहीं पिसवाती हैं न ?'

बुड्ढी बोली— " मने तो काई हरकत न थी, पर ए म्हारी वहुओं कहे छे के— ' अमो बबई नी सेठाणियों थई, हवे हाथ थी पीसनो ? "।

मैं— " ठीक, ए बैंनों बंबई नी सेठाणियों थई एटले पीसवानो दु'ख तो बीजा ने आपी, ए दुख थी मुक्त थई, पण सतति प्रसन करवानु दु ख, जे एक महा दु ख गणाय छे– बीजा ने सुपर्द की धू के ?

मित्रो ! सतति प्रसन करना एक महा सकट से निकलना है, इस संकट से न निकल कर केवल चक्की पीसने के सकट से ये दूर हो गई तब ये बबई की सेठानियें कैसे बन गई ?।

यहाँ (मारवाड) की वहनें कुछ कम नहीं हैं। उनसे दो कदम आगे रखने वाली है।

बहनों, धर्म की ओट लेकर आलस्य से जीवन मत बिताओ। यदि आलस्य से ही- सुस्ती में पड़े रहने से ही मोक्ष मिलती हो तो

इन्द्रिय जीवों की मोक्ष क्यों नहीं हो जाती ? ये २२००० वर्ष का आयुष्य को बिना हाथ पांव हिलाये डुलाये बैठे रहने है, क्यों इनकी मोक्ष होने मे देर हो रही है ?

याद रहे, आलस्य करने से मोक्ष नहीं मिलती।

भाइयों और बहनों ! आप लोग शास्त्रों को देखिये—समझिये, यदि आप में इतनी शक्ति न हो कि उनके तत्व को समझ सकें तो सद्-गुरुओं से समझिये। जब आप शास्त्रतत्व को समझ लेंगे और यह जान जायेंगे कि किस क्रिया के करने से पुण्य तथा पाप होता है, तब पता लग जायगा कि हमें क्या करना चाहिये और उनसे अनभिज्ञ रहने के कारण अभी क्या कर रहे हैं। इस ज्ञान के अभाव से लोग केवल देखा-देखी का अनुकरण करते हैं और अल्प पाप में भी महा पाप मान कर विरोध करते हैं। उदाहरण रूप, कई भाई सर्वव्रती साधु मुनिराजों को आचार विचार पालते हुए देख कर उनकी सूक्ष्म बातों का उसी माफिक अनुकरण करना प्रारम्भ कर देते हैं। साधु किसी को दान नहीं देते इस लिये हम भी साधु के सिवाय किसी को न दें, साधु, गृहस्थ को अनेक प्रकार की क्रियाओं के द्वारा उनका जीवन निर्वाह रूप परोपकार नहीं करते वैसे हम भी न करें, या साधु जिन कामों को न करें, ऐसे परोपकार कार्य में पाप समझें।

यह समझना शास्त्र विधि के अनजानों का है। क्यों कि सर्वव्रती मुनिराजोंका आचार कल्प और कल्प की मर्यादा अलग है और गृहस्थोंकी अलग। जैसे कि जिनकल्पी महात्मा अकेले रहते, मौन रखते, धर्मोपदेश नहीं देते, दूसरे साधुओं कि वया च आदि कृत्य नहीं करते, यह उनका कल्प है। परन्तु यदि स्थिवरकल्पी साधु जिनकल्पी के देखा-देखी अनुकरण करके वयावच करना, संघ की सेवा करना, परोपकार करना छोड दे तो उसको निर्दयी कहा है।

जैसे— ठाणाग सूत्र के ४ थे ठाणे में— " आय अणुकम्पे णाम
ऐगे नो पराणुकम्पे । " अर्थात् कोई कोई पुरुप अपनी आत्मा की—
खान पान आदि से रक्षा करता है परन्तु दूसरे की नही करता, वह—
तो जिनकल्पी या प्रत्येक–बुद्धि या निर्दयी कहा है । ' शास्त्र के
कथन से यह बात स्पष्ट है कि जिनकल्पी या प्रत्येकबुद्धि दूसरे की अ
पानी आदि से रक्षा न करे यह उनका उत्कृष्ट उत्सर्ग मार्ग का कल्प
परन्तु यदि स्थिवर कल्पी साधु उसका अनुकरण करके दूसरे साधु
की अन्न पानी आदि से अनुकम्पा न करे तो वह निर्दयी कहा जाता है।
वैसे ही साधु महात्माओं को जिन जिन कामों को करने का कल्प नहीं
है उन उन कामों को मुनिराज का कल्प बतला कर, अगर श्रावक भी
परोपकारादिक छोड दे तो उसे भी निर्दयी समझना चाहिये । इसलिये
साधु के देखा देखी परोपकार के काम गृहस्थ को छोड देना विधि मार्ग
का अज्ञान है ।

साधुओ की भाव शुचि अति उत्कर्ष होने से स्नान दत-धावन
आदि की, ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये द्रव्य शुचिकी तरफ शास्त्र विधिसे
उदासीनता देख कर कोई भोला जीव यह अर्थ निकाल ले कि जैसे
साधु महात्मा स्नान दत-धावन आदि नहीं करते इसलिये श्रावकों को भी
नहीं करने चाहिये, यह समझना श्रावक के कल्प से अनजानों का है।
क्यों कि शास्त्र में ' आनन्द ' आदि श्रावकों का आचार कथन जहाँ
चला है वहाँ स्नान की और दन्त-धावन आदि की विधि का कथन है ।
परन्तु सर्वथा नहीं करना ऐसा नहीं है । कोई मूर्खता से कहे कि श्रावक
को दन्त-धावन स्नान आदि नहीं कल्पता, समझना चाहिये कि वह
शास्त्र व श्रावक–धर्म से अनजान है ।

शास्त्र में गृहस्थाश्रम चलानेवाले श्रावक के लिये स्नान या दत
धावन आदि बाह्य शुचि का निषेध नहीं किया है बल्कि अ-विधि का

ता है। हाँ, अभ्यस्त स्नानादिक को श्रावक बाह्य शुचि समझता है किन्तु अतरंग भावशुचि नहीं समझता। जैनेतर शास्त्रों में भी स्नान को भी रूप में माना है।

जो लोग इस द्रव्य भाव शुचि के भेद को न समझ कर केवल गृहस्थाश्रम में रह कर गन्देपन से शरीरादिक को रख कर लोगों में यह कहता है कि 'गन्दा रहना, स्नानादि न रहना, यह हमारे श्रावक का आचार है' ऐसा कहनेवाला जैन धर्म के श्रावक की मर्यादा का अनजान है और जैन समाज में धर्म की घृणा पैदा करने रूप पाप का भागी है।

साधु मुनिराजोंकी आचार विधि श्रावकों से बिलकुल भिन्न है अत श्रावक के लिये साधुओं की क्रिया पालने का कहीं आदेश नहीं है। यह बात मैं अपने मन से नहीं कह रहा हूँ, शास्त्र देखने से आपको इस बात का पता लग जायगा।

श्रावकों को सोच समझ कर ही किसी बात का त्याग लेना चाहिये, देखा देखी नहीं। साधुओं को भी त्याग कराते समय श्रावक की वस्तु स्थिति पर दृष्टि अवश्य डालनी चाहिये। यह नहीं कि कोई श्रावक बैठे बैठे ही वैराग्य में आकर सथारा लेने की इच्छा प्रगट करे और साधु वास्तविक स्थिति को न समझ कर झट त्याग करा दे। यदि इस प्रकार का श्रावक मेरे से त्याग लेगा और मैं उसे इसके अयोग्य समझूंगा तो इस कृत्य के लिये साफ इन्कार कर दूँगा। मैं अन्ध-श्रद्धावाला तो हूँ नहीं कि बच्चा भी अगर अन्न का त्याग ले तो मैं उसे धर्म समझ कर दे दूँ।

जो साधु लौकिक दृष्टि को सामने न रखते हुए गृहस्थ को किसी ऊँचे प्रकार का त्याग करा देता है समझना चाहिये कि वह उस पर अनुचित बोझ डालता है।

मुनियों को अपनी विधि पालने के लिये, शास्त्र में लिखे किसी उच्च साधु को अपना आदर्श मानना चाहिये उसी प्रकार श्रावक को अपनी

जैसे– ठाणाग सूत्र के ४ थे ठाणे में—"आय अणुकम्पे नाम ऐगे नो पराणुकम्पे।" अर्थात् कोई कोई पुरुष अपनी आत्मा की ही खान पान आदि से रक्षा करता है परन्तु दूसरे की नहीं करता, वह या तो जिनकल्पी या प्रत्येक–बुद्धि या निर्दयी कहा है।' शास्त्र के इस कथन से यह बात स्पष्ट है कि जिनकल्पी या प्रत्येकबुद्धि दूसरे की अन्न पानी आदि से रक्षा न करे यह उनका उत्कृष्ट उत्सर्ग मार्ग का कल्प है परन्तु यदि स्थिवर कल्पी साधु उसका अनुकरण करके दूसरे साधुओं की अन्न पानी आदि से अनुकम्पा न करे तो वह निर्दयी कहा जाता है। वैसे ही साधु महात्माओं को जिन जिन कामों को करने का कल्प नहीं है उन उन कामों को मुनिराज का कल्प बतला कर, अगर श्रावक भी परोपकारादिक छोड दे तो उसे भी निर्दयी समझना चाहिये। इसलिये साधु के देखा देखी परोपकार के काम गृहस्थ को छोड देना विधि मार्ग का अज्ञान है।

साधुओं की भाव शुचि अति उत्कर्ष होने से स्नान दंत-धावन आदि की, ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये द्रव्य शुचिकी तरफ शास्त्र विधिसे उदासीनता देख कर कोई भोला जीव यह अर्थ निकाल के कि जैसे साधु महात्मा स्नान दत-धावन आदि नहीं करते इसलिये श्रावकों को भी नहीं करने चाहिये, यह समझना श्रावक के कल्प से अनजानों का है। क्यों कि शास्त्र में 'आनन्द' आदि श्रावकों का आचार कथन जहाँ चला है वहाँ स्नान की और दन्त-धावन आदि की विधि का कथन है। परन्तु सर्वथा नहीं करना ऐसा नहीं है। कोई मूर्खता से कहे कि श्रावक को दन्त-धावन स्नान आदि नहीं कल्पता, समझना चाहिये कि वह शास्त्र व श्रावक–धर्म से अनजान है।

शास्त्र में गृहस्थाश्रम चलानेवाले श्रावक के लिये स्नान या दत धावन आदि बाह्य शुचि का निषेध नहीं किया है बल्कि अ-विधि का

किया है। हाँ, वस्त्र स्नानादिक को श्रावक बाह्य शुचि समझता है किन्तु उसको भावशुचि नहीं समझता। जैनेतर शास्त्रों में भी स्नान को धर्म रूप में माना है।

जो लोग इस द्रव्य भाव शुचि के भेद को न समझ कर केवल गृहस्थाश्रम में रह कर गन्देपन से शरीरादिक को रख कर लोगों में यह कहता है कि 'गन्दा रहना, स्नानादि न रहना, यह हमारे श्रावक का आचार है' ऐसा कहनेवाला जैन धर्म के श्रावक की मर्यादा का अनजान है और जैन समाज में धर्म की घृणा पैदा करने रूप पाप का भागी है।

साधु मुनिराजोंकी आचार विधि श्रावकों से बिलकुल भिन्न है अत श्रावक के लिये साधुओं की क्रिया पालने का कहीं आदेश नहीं है। यह बात मैं अपने मन से नहीं कह रहा हूँ, शास्त्र देखने से आपको इस बात का पता लग जायगा।

श्रावकों को सोच समझ कर ही किसी बात का त्याग लेना चाहिये, देखा देखी नहीं। साधुओं को भी त्याग कराते समय श्रावक की वस्तु स्थिति पर दृष्टि अवश्य डालनी चाहिये। यह नहीं कि कोई श्रावक बैठे बैठे ही वैराग्य में आकर सथारा लेने की इच्छा प्रगट करे और साधु वास्तविक स्थिति को न समझ कर झट त्याग करा दे। यदि इस प्रकार का श्रावक मेरे से त्याग लेगा और मैं उसे इसके अयोग्य समझूँगा तो इस त्याग के लिये साफ इन्कार कर दूंगा। मैं अन्ध-श्रद्धावाला तो हूँ नहीं कि कोई भी अगर अन्न का त्याग ले तो मैं उसे धर्म समझ कर दे दूँ।

जो साधु लौकिक दृष्टि को सामने न रखते हुए गृहस्थ को किसी ऊँचे प्रकार का त्याग करा देता है समझना चाहिये कि वह उस पर अनुचित बोझ डालता है।

मुनियों को अपनी विधि पालने के लिये, शास्त्र में लिखे किसी उत्तम साधु को अपना आदर्श मानना चाहिये इसी प्रकार श्रावक को अपनी

मित्रों ! वीतराग का मार्ग, जैसा आप समझते हैं, उससे निराला है। आज आप आटे की मॉड लगा कर कपडा तैयार करके देनेवाले रंगरेजों और बलाइयों को अछूत कहते हैं, उनसे दूर रहते हैं। पर मिल के कपडों में अक्सर चर्बी लगाई जाती है — चर्बीवाले कपडे आपके गले में डालते हैं उन्हें आप 'बडे सेठ' — क्योंकि वे मिल के मालिक हैं न, — कहते हैं और उनसे हाथ मिलाने में अपना अहो-भाग्य समझते हैं। चर्खे से सूत पैदा कर कपडे बनवाने में लोग पाप समझते हैं और 'मैंचेस्टर' के कपडे को पहन कर 'पवित्र हो गये' मानते हैं। ऐसी बुद्धि को क्या कहना चाहिये, जो महा हिंसा करने वाले को उत्तम और अल्प हिंसा करने वाले को नीच माने ?

चर्खे के लिये आज के वैज्ञानिक लोग कहते हैं कि यह सिर्फ पैसा पैदा करने का ही नहीं, पर एकाग्रता प्राप्त करने का भी साधन है। यह चर्खा विधवाओं के धर्म की रक्षा करने वाला और भूखों की भूख मिटाने वाला कहा जाता है। देश की दरिद्रता मिटाने के लिये आज की बडी बडी धनवाली बहनें भी इसे कातती हैं। चर्खा आज कल का आविष्कार नहीं, बहुत पहले का है, इसका जिक्र जैन शास्त्रों की कथा में भी आया है। इस पर योग्य विचार कर्तव्याकर्तव्य का जानकार ही कर सकता है।

आज कर्तव्य के विषय में बडी उलटी समझ हो रही है तभी तो लोग खेती को महा पाप और दूसरे अनार्य वाणिज्य को श्रेष्ठ समझते हैं। यह भी सुनने आया है कि लोग बाजार से घी लाने में पुण्य और घर पर गाय को पाल कर घी पैदा करने में पाप मानते हैं। पर याद रखिये, खेती को जैन शास्त्र में वैश्य कर्म बतलाया गया है।

उत्तराध्ययन जी के ३ रे अध्याय में ऐसा कथन है कि चार अंग का आराधने वाला पुण्यशाली पुरुष स्वर्ग-सुख उपभोग कर उस घर में जन्म लेता है जहाँ दस बोल की योगवाई होती है। पहला

विधि पालने के लिये 'आनन्द' आदि उच्च श्रावकों की दिनचर्या पर ध्यान देना चाहिये। 'आनन्द' आदि श्रावकों की नोंध शास्त्र में श्रावकों के आदर्श के लिये ही ली गई है। यदि ऐसा न होता तो इन लोगों की नोंध लेने से शास्त्र को क्या लाभ?

'आनन्द' आदि उच्च पुरुषों की दिनचर्या के अनुकूल अपनी दिनचर्या न बिताने के ही कारण आज भारत के मनुष्यों का आयु बहुत घट गया है। आज के लोगों की दिनचर्या स्फुर्तिप्रद होने की जगह आलस्यमय हो गई है। यही कारण है कि यूरोप के मनुष्यों की आयु औसत प्रतिशत ७० से ७५ है, और भारतीयों की २० से २५ तक की ही!!

विचार कीजिये इतना महदतर क्यों ? यूरोप वृद्ध होकर क्यों मरता है और भारत तरुण होने के पूर्व ही क्यों मर जाता है? जिस आयु में यूरोप निवासी सेनामें भर्ती होने की उत्कंठा प्रदर्शित करता है वहाँ भारतीय मृत्यु की घडियें क्यों गिनने लगता है? सिर्फ एक कारण, उनका रहन सहन विधि व्यवहार सब नियमित और यहाँ वालों का सब अनियमित! भला अनियमित जीवन भी कोई जीवन है?

मित्रों! मैंने ऊपर आपको देखादेखी अनुकरण करने का कुछ दिग्दर्शन कराया, अब जरा कर्तव्याकर्तव्य के ज्ञान न होने से अल्प पाप को महापाप समझ कर विरोध करते है इस पर भी कुछ कह देना चाहता हूँ। दूर कहाँ जाऊँ, आप खादी को ही लीजिये। लोग कहते हैं—'हम खादी इसलिये नहीं पहनते कि चर्खा गरन गरन फिरता है इसमे वायु काय की हिंसा होती है।' ठीक है, पर विलायती (मैंचेस्टर आदि का) कपडा तो छहो काया की हिंसा के द्वारा तैयार होता है, यह आपको मालूम है?

मित्रों ! वीतराग का मार्ग, जैसा आप समझते हैं, उससे निराला है। आज आप आटे की मॉंड लगा कर कपडा तैयार करने देनेवाले रेगों और बलाइयों को अछूत कहते हैं, उनसे दूर रहते हैं। पर मिल के कपडों में अक्सर चर्बी लगाई जाती है — चर्बीवाले कपडे आपके गले मे डालते हैं उन्हें आप 'बडे सेठ' — क्योंकि वे मिल के मालिक हैं न, — कहते हैं और उनसे हाथ मिलाने में अपना अहोभाग्य समझते हैं। चर्खे से सूत पडा कर कपडे बनवाने में लोग पाप समझते हैं और 'मेंचेस्टर' के कपडे को पहन कर 'पवित्र हो गये' मानते हैं। ऐसी बुद्धि को क्या कहना चाहिये, जो महा हिंसा करने वाले को उत्तम और अल्प हिंसा करने वाले को नीच माने ?

चर्खों के लिये आज के वैज्ञानिक लोग कहते हैं कि यह सिर्फ पैसा पैदा करने का ही नहीं, पर एकाग्रता प्राप्त करने का भी साधन है। यह चर्खा विधवाओं के धर्म की रक्षा करने वाला और भूखों की भूख मिटाने वाला कहा जाता है। देश की दरिद्रता मिटाने के लिये आज की बडी बडी धनवाली बहनें भी इसे कातती है। चर्खा आज कल का आविष्कार नहीं, बहुत पहले का है, इसका जिक्र जैन शास्त्रों की कथा में भी आया है। इस पर योग्य विचार कर्तव्याकर्तव्य का जानकार ही कर सकता है।

आज कर्तव्य के विषय में बडी उलटी समझ हो रही है तभी तो लोग खेती को महा पाप और दूसरे अनार्य वाणिज्य को श्रेष्ठ समझते हैं। यह भी सुनने आया है कि लोग बाजर से घी लाने में पुण्य और घर पर गाय को पाल कर घी पैदा करने में पाप मानते हैं।

पर याद रखिये, खेती को जैन शास्त्र मे वैश्य कर्म बतलाया गया है।

उत्तराध्ययन जी के ३ रे अध्याय में ऐसा कथन है कि चार अग का आराधने वाला पुण्यशाली पुरुष स्वर्ग-सुख उपभोग कर उस घर में जन्म लेता है जहाँ दस बोल की बागवाडी होती है।

विधि पालने के लिये 'आनन्द' आदि उच्च श्रावकों की दिनचर्या पर ध्यान देना चाहिये। 'आनन्द' आदि श्रावकों की नोंध शास्त्र में श्रावकों के आदर्श के लिये ही ली गई है। यदि ऐसा न होता तो इन लोगों की नोंध लेने से शास्त्र को क्या लाभ?

'आनन्द' आदि उच्च पुरुषों की दिनचर्या के अनुकूल अपनी दिनचर्या न बिताने के ही कारण आज भारत के मनुष्यों का आयु बहुत घट गया है। आज के लोगों की दिनचर्या स्फूर्तिप्रद होने की जगह आलस्यमय हो गई है। यही कारण है कि यूरोप के मनुष्यों की आयु औसत प्रतिशत ७० से ७५ है, और भारतीयों की २० से २५ तक की ही!!

विचार कीजिये इतना महदतर क्यों? यूरोप वृद्ध होकर क्यों मरता है और भारत तरुण होने के पूर्व ही क्यों मर जाता है? जिस आयु में यूरोप निवासी सेनामें भर्ती होने की उत्कंठा प्रदर्शित करता है वहाँ भारतीय मृत्यु की घडियें क्यों गिनने लगता है? सिर्फ एक कारण, उनका रहन सहन विधि व्यवहार सब नियमित और यहाँ वालों का सब अनियमित! भला अनियमित जीवन भी कोई जीवन है?

मित्रों! मैंने ऊपर आपको देखादेखी अनुकरण करने का कुछ दिग्दर्शन कराया, अब जरा कर्तव्याकर्तव्य के ज्ञान न होने से अल्प पाप को महापाप समझ कर विरोध करते है, इस पर भी कुछ कह देना चाहता हूँ। दूर कहाँ जाऊँ, आप खादी को ही लीजिये। लोग कहते हैं--'हम खादी इसलिये नहीं पहनते कि चर्खा गरन गरन फिरता है इसमें वायु काय की हिंसा होती है।' ठीक है, पर विलायती (मैंचेस्टर आदि का) कपडा तो छहों काया की हिंसा के द्वारा तैयार होता है, यह आपको मालूम है?

मित्रो ! वीतराग का मार्ग, जैसा आप समझते हैं, उससे निराला है। आज आप आटे की माँड लगा कर कपडा तैयार करके देनेवाले गणों और बलाइयों को अछूत कहते हैं, उनसे दूर रहते हैं। पर मिल के कपडों में अक्सर चर्बी लगाई जाती है— चर्बीवाले कपडे आपके गले में डालते हैं उन्हें आप 'बडे सेठ'— क्योंकि वे मिल के मालिक हैं न,— कहते हैं और उनसे हाथ मिलाने में अपना अहोभाग्य समझते हैं। चर्खे से सूत पैदा कर कपडे बनवाने में लोग पाप समझते हैं और 'मेंचेस्टर' के कपडे को पहन कर 'पवित्र हो गये' मानते हैं। ऐसी बुद्धि को क्या कहना चाहिये, जो महा हिंसा करने वाले को उत्तम और अल्प हिंसा करने वाले को नीच माने ?

चर्खों के लिये आज के वैज्ञानिक लोग कहते है कि यह सिर्फ पैसा पैदा करने का ही नहीं, पर एकाग्रता प्राप्त करने का भी साधन है। यह चर्खा विधवाओं के धर्म की रक्षा करने वाला और भूखों की भूख मिटाने वाला कहा जाता है। देश की दरिद्रता मिटाने के लिये आज की बडी बडी धनवाली बहनें भी इसे कातती हैं। चर्खा आज कल का आविष्कार नहीं, बहुत पहले का है, इसका जिक्र जैन शास्त्रों की कथा में भी आया है। इस पर योग्य विचार कर्तव्याकर्तव्य का जानकार ही कर सकता है।

आज कर्तव्य के विषय में बडी उलटी समझ हो रही है तभी तो लोग खेती को महा पाप और दूसरे अनार्य वाणिज्य को श्रेष्ठ समझते हैं। यह भी सुनने आया है कि लोग बाजर से घी लाने में पुण्य और घर पर गाय को पाल कर घी पैदा करने में पाप मानते हैं।

पर याद रखिये, खेती को जैन शास्त्र में वैश्य कर्म बतलाया गया है।

उत्तराध्ययन जी के ३ रे अध्याय में ऐसा कथन है कि चार अंग का आराधने वाला पुण्यशाली पुरुष स्वर्ग–सुख उपभोग कर उस घर में जन्म लेता है जहाँ दस बोल की योगवाई होती है। पहला

ले जावें, वे भारतीयों को सस्ता घी दें इस में कुछ न कुछ रहस्य समझना चाहिये । क्योंकि वे दिवाल्यिये बनने के लिये तो व्यापार करते ही नहीं न ?

मित्रों ! आप अहिंसावादी होने का गौरव करते हैं तो अहिंसा का सच्चा अर्थ समझिये । अहिंसक कहलाने वाले कई भाई अहिंसा का वास्तविक अर्थ न जानने से कई बार ऐसे काम कर बैठते हैं कि अन्य धर्मावलम्बी बन्धु उनके कार्यों को देख कर हँसी उडाते हैं, और तो और जैन धर्म को लजाते हैं ।

कहाँ जैन धर्म की अहिंसा की विशालता और कहाँ इन भाइयों की अहिंसा के पीछे हिंसा का बडा भाग !

हिंसा अहिंसा का रूप न समझ सकने के कारण ही कई श्रावक चींटी मर जाने पर जितना अफसोस जाहिर करते हैं, उतनी भी दया मनुष्य पर अत्याचार करने में नहीं लाते !

यह बात हृदय में अंकित कर लीजिये कि अत्याचार करना जितना पाप है कायरता के भय से (वश न चलने से) तमोगुणी मौनावलम्बन कर अत्याचार सहन कर लेना भी उतना ही पाप है । हाँ, वास्तविक शांतिधारण कर लेना यह तो महान् धर्म है ।

पत्रों में पढते हैं कि— ' गुंडे लोग हिन्दू महिलाओं का अपहरण कर ले जाते हैं । स्त्रियों को अकेले में देख कर चोरी कर ले जाने का कृत्य, जिस प्रकार उन लोगों का नीच और महा घृणित कृत्य कहा जायगा, यदि उसी प्रकार पति, पुत्र, भाई या पिता के सामने यह दुष्ट चोरी कर ले जाय और वे कायर बन कर भाग खड़े हों तो उन्हें, उस गुंडे से भी महानीच, महाकायर और महा पाप को करने वाले समझने चाहिये ।

वह मनुष्य पुत्री का पिता, बहिन का भाई, पत्नी का पति और और माता का पुत्र होने लायक नहीं है जो मौका पडने पर उनकी रक्षा न कर सके।

दु ख के साथ कहना पडता है कि आज के अधिकाश जैन-बन्धु इस मामले में अपने अन्य सहयोगी (हिन्दू) बन्धुओं से बहुत पीछे नजर आते हैं। जैनों की अहिंसा पर लोग टीका टिप्पणी करते हैं और इनकी अहिंसा को कायर ' बनानेवाली ' कहते है शायद इसका कारण भी यही हो।

' सुधा ' नामक पत्रिका में अहिंसा पर एक आलोचनात्मक लेख पढा था। उसमें लेखक ने गीता के—

" अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन "

इस श्लोक में जो ' अनार्य ' शब्द आया है उसका अर्थ– ' जैन ' या ' बौद्ध ' किया है। शायद उसने आज के जैनों की अकर्मण्यता देख कर ऐसा अनुमान लगा दिया हो। पर यदि लेखक जैन शास्त्र की अहिंसा पर लिखने के पहले शास्त्रों का अवलोकन कर विचार पूर्वक लिखा होता तो मेरा अनुमान है कि ऐसा लिखने का कभी साहस न करता।

जैनों की अहिंसा अनार्यों की नहीं पर वीर आर्यों की है। सच्चा जैन काम पडने पर रण सग्राम में जाने से नही हिचकता। हॉ, वह इस बात का जरूर खयाल रखता है कि मैं अन्याय का भागी न बन जाऊँ, मेरे से व्यर्थ की हिंसा न होजाय।

अहिंसा कायर बनाती है या कायरों की है यह बात अहिंसा के वास्तविक गुण को न समझने वाले ही कह सकते हैं। अहिंसा-व्रत वीर शिरोमणि ही धारण कर सकता है। कायर अहिंसा--धारी नहीं कहला

सकते। वे अपनी कायरता छिपाने के लिये भले ही अहिंसा का ढोंग रचले पर उन्हे अहिंसक कहना योग्य नहीं कहा जा सकता। वैसे तो सच्चा अहिंसावादी व्यर्थ मे एक चींटी के प्राण हरण करने में धर्रा जायगा क्यों कि यह संकल्पजा हिंसा है। इस कृत्य को वह अपना व्रत भग का कारण समझता है। पर जब न्याय से रण समाय में जाने का मौका आ पडे तो वह सग्राम करता हुआ भी अपने व्रत को अखंडित समझता है।

मित्रों! जो संकल्पजा हिंसा करता है उसे पापी के नाम से पुकारते हैं पर जो आरम्भ जनित करता है उसे इस नाम से नहीं पुकार सकते।

भाइयों! अब आप लोग समझ गये होंगे कि जैन की अहिंसा इतनी सकुचित नहीं है कि ससार कार्य में बाधक हो, पर इतनी विस्तृत है कि बडे बडे राजा महाराजा भी धारण कर सकते हैं। उनके व्यवहार में किसी प्रकार की रुकावट नहीं आ सकती। जैन अहिंसा यदि सकुचित होती और ससार कार्य में बाधक होती तो पूर्व के राजा महाराजा इस धर्म को कैसे धारण करते?

मैं पहले कह चुका हूँ कि श्रावक सकल्पजा हिंसा का त्यागी होता है और आरभजा का आगार रखता है। वह आरम्भ से बचने की कोशीश सकल्पजा से पहले करने में महा मूर्खता मानता है। उसे क्रम से करना ही श्रेयस्कर प्रतीत होता है। वह मानता है कि इसमें ज्यादा कठिनाइयों का सामना भी नहीं करना पडता।

प्यारे मित्रों! आप लोगों को अहिंसा का अच्छी तरह ज्ञान हो जाय इसलिये अब एक मोटी बात और कह देता हूँ।

अहिंसा के आप तीन भेद कीजिये। सात्विकी राजसी और तामसी। सात्त्विकी अहिंसा वीतराग पुरुष, पूर्णत्यागी मुनिगण, आरम्भ

त्यागी विवेकी श्रावक आदि निरारम्भ रीति से अर्थात् जिस वृत्ति को पालते हुए दूसरे किसी जीव को दुःख न हो, वे ही पाल सकते है। राजसी अहिंसा उसे कहते हैं जिसमें अन्याय के प्रतिकार के लिये आरम्भजा हिंसा करनी पडे। जैसे राम और रावण का दृष्टान्त लीजिये। रावण, राम की सीता को हरण कर ले गया था। राम ने सीता को माँगा, पर उसने न दिया, तब लाचार होकर राम ने उसके विरुद्ध शस्त्र उठाया और उसका नाश किया। यह हिंसा जरूर है पर यह राजसी अहिंसा का ही पक्ष कहलाता है। रावण ने शस्त्र उठाया वह संकल्पजा हिंसा थी और राम की आरम्भजा, बस इस में यही फर्क है। चेटक महाराजा और कोणिक का सग्राम बतलाता है कि श्रावक अपने अहिंसा व्रत को पालन करता हुआ न्याय पक्ष की रक्षा के लिये जो हिंसा करता है वह आरम्भजा हिंसा है परन्तु सकल्पजा हिंसा की अपेक्षा अहिंसा ही है। यह अहिंसा सात्विकी से नीचे है पर तामसी* से—जिसमें अपनी माता, स्त्री, बहन आदि पर अत्याचार कोई करता हो, उसे देख कर मन में बहुत क्रोध रखता है, पर कहीं मर जाऊँगा या मुझे कोई मार डालेगा अत चुप्पी साधना ही अच्छा है, लोगों के कहने पर कहे कि मैं अहिंसा-व्रत का पालक हूँ, मुझे उस पर दया आगई थी, इसलिये छोड दिया—इससे बहुत ऊँची है। तामसी अहिंसा आत्मा के सद्गुण को नाश करने वाली और पतन की तरफ ले जाने वाली है। जो ऐसी अहिंसा से अहिंसक कहलाना चाहता है वह वास्तव में कायर है, नपुंसक है, ससार में बोझ रूप है। इतना ही नहीं, वह जाति का, संस्कृति का और धर्म का महा घातक है।



---

*तामसी अहिंसा केवल दिखने में अहिंसा है पर वास्तव में हिंसा ही है।
—स०